राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बाक्स नं. ७०, वाराणसी-१.

मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा०) लि.
मानमन्दिर, वाराणसी-१

प्रथम संस्करण (१०,०००): १९६१
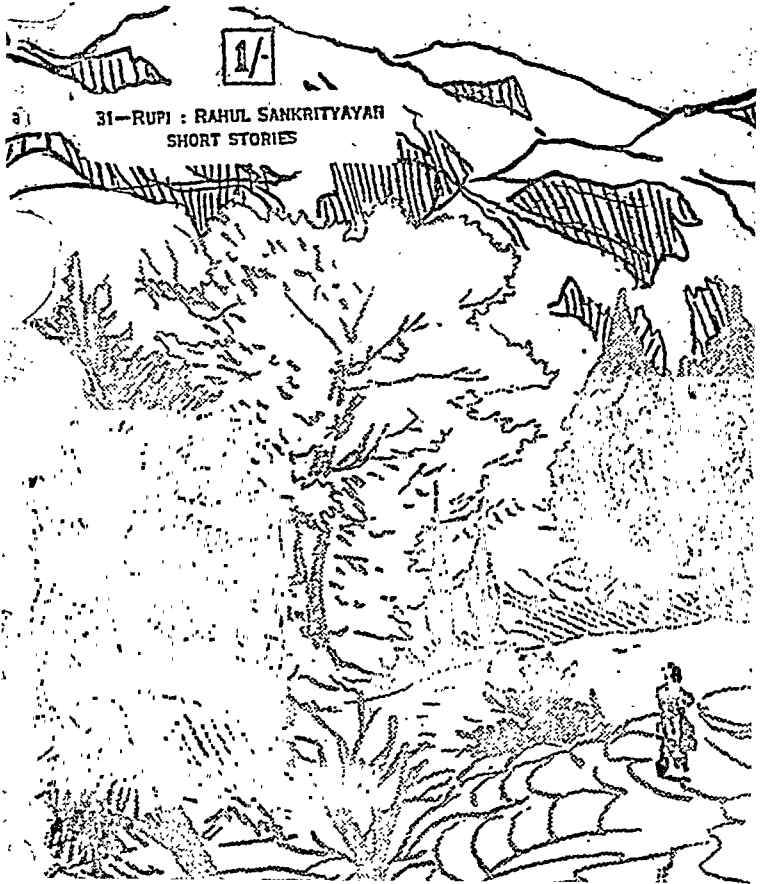
राहुल सांकृत्यायन

महापंडित राहुल सांकृत्यायन हमारे देश के महान् साहित्यकार हैं। न केवल हमारे देश में ही, बल्कि सारे विश्व में उनके पाठकों की एक विशाल ◦ है। राहुलजी ने इतिहास, दर्शन, आलोचना, कथा-साहित्य आदि सभी विषयों पर साधिकार लेखनी उठायी है।

राहुलजी के 'रूपी' में पर्वतीय विलासपुरियों के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करनेवाली, निम्न नौ सरस एवं मनोहर कहानियों का संग्रह है :—

रूपा [illegible]त इस जीवनके लिये पैदा नहीं हुई थी। कई बार इस दलदलसे निकलनेकी उसने कोशिश भी की। मधुपुरी सवा सौ वर्ष पुरानी विलासनगरी है। उसके पहले वही लोग यहाँके घने जंगलोंमें अपने पशुओंको चराते थे, जो अब उसकी सीमाके बाहर अपने छोटे-छोटे गाँवोंमें रहते हैं। सभी बातोंमें यह लोग बहुत पिछड़े हुए हैं, लेकिन पिछड़ा होनेका मतलब बुरा होना नहीं है। मधुपुरीके बसनेके पहले यह अव्वल नम्बरके ईमानदार थे और दूसरोंकी अपेक्षा अब भी हैं। व्यभिचार इनके यहाँ नहीं था। हाँ, एक पुरानी परिपाटी इनके यहाँ चल रही थी, जो दूसरी जगहोंमें सहस्राब्दियों पहले उठ चुकी है। अतिथि-सेवा इनमें परमधर्म मानी जाती थी, और अतिथि-सत्कार केवल खान-पानसे ही नहीं, बल्कि स्त्रीको भी सुलभ करके यह करते थे। लेकिन, जब उन्हें मालूम हुआ, कि ये बाहरसे आनेवाले अतिथि ऐसी सेवाका दुरुपयोग करते हैं, तो वह इससे हट गये। गरीबी कहाँ नहीं है, लेकिन इनमें खाते-पीते लोगोंकी संख्या बहुत कम थी। रूप-रंगमें यहाँकी तरुणियाँ ज्यादा अच्छी होती हैं, यह भी इनके लिये घाटेका सौदा हुआ। मधुपुरीने यहाँ बसकर यहाँकी तरुणियोंके जीवनके साथ खेलवाड़ करना शुरू किया।

उसकी माँ जब तरुणी थी, तो मधुपुरीके मेला-उत्सवमें अपनी सहेलियोंके साथ आती। फिर किसी तरह एक देशी सैनिकके साथ उसका भाग्य जुट गया। दोनों पति-पत्नीके तौरपर रहते। उन्हें यह कन्या पैदा हुई, रूप-रंगमें माँसे अधिक सुन्दरी थी। उसका नाम

पी रक्खा गया । उसने बचपनसे ही नागरिक जीवनको देखा,
ाप अपनी कन्याके बारेमें कितने ही मनसूबे रखता था । लेकिन,
ानेक बापोंकी तरह उसका भी मनसूबा धरा रह गया, जब चार वर्ष
ो बच्चीको छोड़कर वह चल बसा । माँ तरुणी थी । परिस्थितियोंने
ाहे जो भी उससे कराया हो, लेकिन वह स्वभावतः बुरी नहीं थी ।
दुनिया सूनी हो जाती है, जब तरुण-स्त्री असहाय छोड़ दी जाती है ।
अपने सैनिक पतिकी नगरीमें भी शायद कोई रखनेवाला उसे मिल
जाता, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ, या उसे स्वच्छन्द पहाड़ी
जीवन प्रिय लगा । वह फिर मधुपुरी चली आई और एक दुबले-पतले
पहाड़ी चौकीदारसे उसका नाता जुट गया । पति दो भाई थे ।
अभी भी इस अंचलमें पांडव-विवाहकी प्रथा है, जिसे लोग बाहर-
वालोंके सामने छिपानेकी कोशिश करते हैं । वह छोटे पतिको
देवर कहा करती, और अब बड़ेके मर जाने पर उसे जेठका नाम
देती है ।

करैला और नीमचढ़ा—गाँवके जीवनको नागरिक-जीवनमें
परिवर्तित करने पर यह कहावत लागू नहीं होती, यह ठीक है;
किन्तु पहाड़ी ग्रामके सीधे-सादे जीवनपर नागरिक जीवन जब
हावी हो जाता है, तो वह अतिको पहुँचा देता है । गाँवमें रहते समय
चाहे कुछ स्वच्छन्दता बरती जाय, लेकिन वहाँ समाजका कानून
सिरपर रहता है, जाति-बिरादरीवालोंकी रायकी पर्वाह करनी
पड़ती है । उनका समाज इसे बुरा नहीं मानता, यदि कोई स्त्री
अपने एक पुरुषको छोड़कर दूसरेसे व्याह कर ले, उसे केवल व्याहका
खर्च लौटाना पड़ता है । लेकिन, सिपाहीकी स्त्री जब मधुपुरी
जैसी विलासपुरीमें आकर रहने लगी, तो उसपर वहाँके आकर्षण
और प्रलोभन अपना असर करने लगे । चौकीदारकी तनखाह ही
कितनी होती है ? फिर उसकी तीन-चार और सन्तानें भी हो
गई । सात-सात आठ-आठ आदमीका खर्च चलना मुश्किल था ।

चाहे घरभर मेहनत करनेके लिये तैयार था । वह पासके जंगलोंसे लकड़ियाँ काट कर बेचते । बँगलेमें साग-सब्जी उगाने लायक काफी जमीन थी, लेकिन पानीका अभाव था, इसलिये उसका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता था। मधुपुरीमें दूधकी भी बड़ी माँग है, और सारी कड़ाइयोंके रहने पर भी उसमें पानी डालना रोका नहीं जा सकता । किन्हीं-किन्हीं चौकीदारोंने गाय पाल रक्खी हैं, कुछ बकरियाँ भी पाल लेते हैं, क्योंकि कसाई बकरोंका अच्छा दाम दे देते हैं। लेकिन, चौकीदारने कभी अपने यहाँ कोई जानवर नहीं पाला । शायद नगरीके एक छोरपर जंगलके बीच होनेके कारण यहाँ बघेरेका डर बना रहता है, इसलिये उसने पशु-पालन पसन्द नहीं किया, अथवा उतना पैसा नहीं जुट सका, कि जानवर खरीदें । हाँ, नगरके छोरपर तथा बाहरके गाँवोंके पास होनेसे एक सुभीता उसे यह जरूर था, कि गाँवकी बनी सस्ती शराबको लाकर दूने दामपर यहाँ लोगोंको पिलायें । उस समय अभी आस-पासके गाँव अंग्रेजी-भारतमें नहीं, बल्कि रियासतमें थे, इसलिये इस पिछड़े इलाकेमें शराब बनानेमें कोई बाधा नहीं थी । बाधा अब भी नहीं है, क्योंकि यदि कानून कड़ाई करना चाहता है, तो गाँवके गाँवको ले जाकर जेलमें बन्द करना पड़ेगा और गान्धीजीके असहयोग-आन्दोलनका नज़ारा सामने आयेगा, हजारों-हजार कैदियोंका भरण-पोषण करना सरकारके लिये सिर-दर्दका कारण होगा। लेकिन, मधुपुरीके किसी बँगलेमें ऐसा करना आसान नहीं था । कभी-कभी पुलिस भी छापा मारती । पर, चौकीदार काफी होशियार था, पुलिसके कितने ही जवानोंके लिये उसने सस्ती शराबकी सदावर्त खोल रक्खी थी ।

संक्षेपमें परिवारकी जीविकाके यही साधन थे ।

'वुभुक्षितः किं न करोति पापं' की वात इस परिवारके ऊपर घटने लगी, जव कि वच्चे सयाने होकर अधिक खाने और कपड़ेकी माँग करने लगे। अपनी सामाजिक प्रथा के अनुसार वड़ी लड़कीको किसी अपने जात-भाईको विवाहकर कुछ रुपया मिल सकता था, लेकिन वह रुपया वहुत कम होता, जो एक-दो महीनेमें खतम हो जाता। माँको नगरकी हवा लग चुकी थी। उसके दोनों पति विलासपुरीके निवासी होनेके कारण कितनी ही वातोंको जानते थे। आखिर व्याहके लिये पैसा लेना भी लड़कीको वेचना था। एक वारके वेचनेमें कम और रोज-रोजके वेचनेमें ज्यादा पैसा तथा स्थायी आमदनी होने लगे, तो इससे वढ़कर क्या वात हो सकती थी? लड़की चौकीदार या उसके भाईकी नहीं थी। यदि होती भी तो कुछ [illegible] ख्याल करते, इसकी कम सम्भावना थी। शायद तरुणाईमें पैर रखनेपर शराव पीनेके लिए कुटियामें पहुँचनेवाले लोगोंसे लड़कीकी छेड़-छाड़ होने लगी थी। उसकी माँ मधुवाला थी, शायद उसने भी लड़कीके लिये रास्ता साफ किया था। लेकिन, इस वँगलेमें जिस तरह निर्द्वन्द्व शरावके ग्राहक मिल सकते थे, वैसे रूपके ग्राहक नहीं मिल सकते थे। कभी-कभीसे कितनी आमदनी होती? माँने सलाह ही नहीं दी, वल्कि वह एक दिन अपनी लड़कीको लेकर देशके एक नगर में पहुँच गई। वेश्यावृत्ति आजकी नागरिक सभ्यताका एक अभिन्न अंग है, और नगरोंके अस्तित्वमें आनेके साथ ही वह खुद अस्तित्वमें आई भी। उसके कई प्रकार हैं। कुछ वेश्यायें नाच-गानेका पेशा भी करती हैं, कुछको ऐसी किसी कलासे प्रयोजन नहीं, वह खुद केवल अपने शरीरको अर्पण करती हैं, लेकिन तो भी खुले-आम वाजारमें वैठती हैं। एक तीसरी तरहकी वेश्यावृत्तिका भी स्थान है, जिसमें पेशेवर और गैर-पेशेवर दोनों प्रकारकी शरीर वेचनेवाली सामूहिक रूपसे वेश्यावृत्ति करती हैं, जिसे चकला कहते

हैं। यदि माँ चकलेसे बिल्कुल अपरिचित होती, तो एकाएक लड़कीके साथ वहाँ पहुँच जाना उसके लिये सम्भव नहीं था।

उसका नाम बहुत अच्छा-सा किसी और ही ख्यालसे रक्खा गया था, लेकिन उसके आजके जीवनमें उस नामको दोहराना अच्छा नहीं है—रूपसे आजीविका करनेवाली होनेके कारण हम उसे रूपाजीवा कहते। पहलेपहल चकलेका जीवन शुरू करनेमें उसको बहुत बेचैनी होती, यदि माँने पहलेसे ही उस पथके लिये तैयारी न कराई होती। वह ठण्ढे पहाड़की रहनेवाली थी, और देशके नगर चार-पाँच महीने से अधिक उसके अनुकूल नहीं हो सकते थे। पहला जाड़ा इस तरह उसने चकलेमें बिताया। चकलेकी दलाल स्त्री उसके घरका प्रबन्ध करती, ग्राहक पैदा करती और खाने-पीने आदि चीजोंके प्राप्त करनेमें उसकी सहायता करती। यह सब वह मुफ्त थोड़े ही करती? इसके लिए रूपीको अपने बेचनेकी कीमतका कितना ही भाग उसे दे देना पड़ता। तो भी उसने पहले जाड़ोंमें अपने लिए कुछ कपड़े और जेवर बनवाये, माँ और भाइयोंके लिए भी कुछ खरीदा और सौ रुपया नगद लेकर मधुपुरी लौट आई।

अब गर्मियों और बरसातमें मधुपुरी और जाड़ा तथा वसन्तमें देशके किसी नगरमें वह जाया करती। वह न शिक्षिता थी और न शिक्षित समाजमें पली थी, इसलिए उच्च आदर्श क्या है इसकी भनक भी उसके कानमें नहीं पड़ी थी। लेकिन, अपने व्यवहारसे कीचड़में गिरी होनेपर भी वह स्वार्थमें डूबी नहीं थी। वह समझती थी, अपने भूखे परिवारकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य भी उसकी समझसे बाहरका शब्द था, सीधी बात यह थी कि भूखे पेट चिथड़े लपेटे अपने परिवारको देखकर उसका दिल तिलमिला जाता और उसका ही उपचार वह इस प्रकार सहायता पहुँचाकर कर रही थी।

मौसम वीतते वर्ष वीत रहे थे। उसने १४-१५ वर्षकी उमरसे इस जीवनको स्वीकार किया था। उस समयसे अव उसकी वुद्धि भी ज्यादा विकसित हो चुकी थी। पहले घुटनों चलते वालककी तरह अपनी माँकी अँगुली पकड़कर चलना ही भर वह जानती थी। अव वह कुछ खुद सोचने लगी थी। उसके परिवारकी स्थिति इस सहायतासे सुधर नहीं रही थी। मांस और शराव घरमें कुछ और खाई-पी जाती, कुछ दिनोंमें पैसे खर्च हो जाते तथा ग्राहकोंके दुर्लभ हो जाने पर फिर भूखे पेट रहने पड़ते। चिथड़े कभी थोड़े दिनोंके लिए उतर जाते और कवाड़ियोंकी दूकानसे कोई सूती या ऊनी कोट आ जाता। लेकिन कुछ दिनों वाद वह फिर विक जाते और कोनेमें फेंके चिथड़े फिर शरीरपर पड़ जाते। रूपी चिथड़े लपेटकर नहीं सकती थी, तव उसे ग्राहक कहाँसे मिलते? उसके शरीरको रखना भी आवश्यक था, इसलिए परिवार भले ही भूखा रहे, लेकिन उसे भखा नहीं रक्खा जाता।

वेश्यावृत्तिको सभी धर्मोंने पाप वतलाया है और इसके लिए नर्कमें कठोर यातनाओंका चित्र खींचा है; लेकिन हजारों वर्षोंसे नर्ककी धमकी दी जा रही है, तो भी वेश्यावृत्ति कम होनेकी जगह वढ़ती ही गई। उधारके दण्डका यहाँ कोई सवाल नहीं, धीरे-धीरे प्रकृति भी इसे वर्दाश्त करनेके लिए तैयार नहीं हुई और उसने इसी जन्ममें आँखोंके सामने घोर दण्ड देना शुरू किया, और रतिज-रोग (सूजाक और गर्मी) ने दुनियामें अपना फैलाव शुरू किया। कौन देश है जहाँ थैलीका वोलवाला हो, और यह दोनों उसके अभिन्न सहचर आ मौजूद न हों। पुरियों और विलासपुरियोंमें तो इनका और भी जवर्दस्त प्रभाव है। ठण्डे पहाड़ोंको देखकर अंग्रेजोंने जहाँ-जहाँ गोरोंकी छावनियाँ वनाईं, वहाँ दस-दस मील चारों तरफ लोग इनके मारे त्राहि-त्राहि करने लग। अगर इनके प्रभावकी मात्रा जानना हो तो किसी गाँवमें कितन निस्सन्तान परिवार हैं, इसे पूछ

लीजिये। सूजाक आदमीको निस्सन्तान बनाता है। शिमलाके पास ऐसे कितने ही गाँव मिलेंगे, जिनके आधे घर निस्सन्तान होकर उजड़ गये। पेनिसिलिन उसकी अमोघ दवा है, लेकिन एक बार अच्छा हो करके भी तो मुक्ति नहीं मिल सकती, यदि समाजमें उसका बहुत फैलाव हो और ऐसे स्त्री-पुरुषोंका संसर्ग हो। गर्मी या आतशक उससे भी भयंकर है, क्योंकि यह निस्सन्तान तो नहीं करता, लेकिन कोढ़को पैदा कर देता है। रूपी अपने इस जीवनमें इन भयानक रोगोंसे कैसे बच सकती थी? तीन साल भी बीतने नहीं पाये कि वह आतशकका शिकार हुई। जब बनियेने हाट लगा दी, तो वह किसी ग्राहकके हाथमें अपने सौदेको बेचनसे इन्कार कैसे कर सकता है? आजसे डेढ़ हजार वर्ष पहले शूद्रकने अपने 'मृच्छकटिक' नाटकमें लिखा था।

> वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरः मूर्खोपि वर्णाधमः,
> फुल्लां नाम्यति वायसोपि विहगो या नामिता बर्हिणा।
> ब्रह्मक्षत्रविशः तरन्ति च यथा नावा तथैवेतरे,
> त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वश्यासि सर्वं भज॥

इस प्रकार बावड़ी, लता और नौकाकी तरह वेश्याको किसीके साथ भेदभाव न करके उसकी सेवा करनेके लिये उसी कालकी तरह आज भी तैयार रहना पड़ता है। रूपीकी बीमारी बहुत भयंकर थी, घाव हो गये थे, उसे चलना-फिरना मुश्किल हो गया था। उसे मधुपुरीके अस्पतालमें ले गये। दवाई होने लगी, लेकिन सात रुपये रोज वहाँ देना उसके लिये बहुत दिनों तक सम्भव नहीं था। घाव अभी पूरी तरह अच्छा नहीं हुआ था, तभी वह वहाँसे चली आई। सौतेले बापका गाँव अब भी मौजूद था, वहाँ कुछ खेत भी थे, और एक टूटा-फूटा घर भी। वह वहाँ भेज दी गई। उसे मालूम होने लगा कि यह जीवन भारी संकटका है। उसे हालकी बीमारीमें मृत्युके मुँह साफ-साफ दिखाई पड़ते थे। शायद वह यह न जानती थी, कि

कुष्टमें परिणत होकर उसका जीवन उस मृत्युसे भी कहीं अधिक भयंकर होगा। जबतक रोग छिपा रहे, तभीतक ग्राहक आ सकते थे, जब उन्हें साफ मालूम हो, तो कौन अपने गलेमें अपने हाथसे फाँसी लगाना चाहेगा? यदि उसे अपनी हाट उठा देनी पड़ी, तो फिर क्या वह दाने-दानेके लिये मुहताज नहीं होगी। उसने ऋषिकेश और दूसरी जगहोंपर सैकड़ोंकी तादादमें कोढ़ी स्त्रियोंको नहीं देखा था, नहीं तो जानती कि उनमेंसे अधिकांश रूपकी हाट लगानेके कारण ही मौतसे भी बदतर जिन्दगी भोगती कड़ी धूपमें रास्तेके किनारे बैठी भीख माँग रही हैं।

जो भी हो, खतरे का उसे कुछ पता लग गया। बीमारी न होती, तो भी उसे यह ख्याल तो आता ही था, कि रूप आजीवन साथ नहीं रहता, यौवन बादलकी छायाकी तरह इतना जल्दी निकल जाता है, कि पता नहीं लगता। उसे इस बात की फिकर पड़ी; कि किस तरह इस जीवनसे निकला जाय। स्वस्थ हो जानेपर फिर उसे आधा समय देशके शहरोंके चकलोंमें और आधा समय अपनी नाँकी कुटियामें उसी जीवनको बिताना पड़ेगा। लेकिन, जिस तरह चकलेका रास्ता पा जाना उसके लिये आसान था, उसी तरह उससे निकलनेका रास्ता पाना आसान नहीं था। पहले उसके चेहरेपर मुस्कुराहट खेला करती थी, अब वह साफ दिखलावटी मालूम होती थी—वह कभी-कभी आती और वह भी कृत्रिम मालूम होती। रूपी रूपाजीवा थी जरूर, लेकिन वह निर्लज्ज नहीं थी। शास्त्र में "सलज्जा गणिका नष्टा" कहा गया है। इसका कुछ प्रभाव उसके व्यवसाय पर भी पड़ सकता था। वह सचमुच सुन्दरी थी, जिसमें यौवनने मिलकर बहुत आकर्षण पैदा कर दिया था।

:o: :o: :o:

अन्धेरेमें उसने बहुत हाथ-पैर मारा। जो भी ग्राहक उसके पास आते, सभी अपना अनन्य-प्रेम दिखलाते हुए उसपर अपनेको

न्यौछावर करते । लेकिन, उसने सैकड़ों मुखोंसे यही बात सुनते-सुनते अब पुरुषोंके प्रति विश्वास खो दिया था । बीमारी एक नहीं दो मर्तबे आई और फिर उसने दवाई सुननेसे इन्कार कर दिया । अब वह यौन-रोगको निर्वाध रूपसे वितरित कर रही थी, लेकिन तो भी गुड़के ऊपर टूटनेवाली मक्खियोंकी तरह पुरुषोंकी कमी नहीं थी । कुछ उसके स्थायी ग्राहक बन गये थे, और कुछ कभी-कभी आते थे । चकले नगरके अन्धेरे कोनेमें होते हैं, और वहाँ बहुत भय भी रहता है, इसलिये ग्राहकोंको लुक-छिपकर ही पहुँचना पड़ता है । पर, मधुपुरीमें रहनेके समय उसका दरबार खुला-सा चलता । पुलिस बहुत दूर नहीं रहती थी, कानून भी बाधक था, लेकिन जिस तरह उसकी कुटियामें सस्ती शराब बराबर बिकती रहती, उसी तरह सस्ता रूप भी । मधुपुरीमें बड़े-बड़े लोग ही अपनी स्त्रियोंके साथ आते हैं । छोटे-मोटे काम करनेवाले चाहे पहाड़ी हों या देशी, सभी अकेले आते हैं । रूपीने अपनी कीमत बढ़ा-चढ़ा कर नहीं रक्खी थी, इसलिय भी ग्राहकोंकी कमी नहीं होती थी । पिछले छ-सात सालों में उसे कितनी ही बार कई महीनोंके लिये अपने गाँवमें जाकर रहना पड़ा, जिसका मतलब यही था कि बीमारीने उसे व्यवसायके लायक नहीं रक्खा था ।

रूपी अब २५ से ऊपरकी हो गई थी । इधर पाकिस्तान बननेके बाद पंजाबसे भागे कितने ही साधारण लोग मधुपुरीमें भी रोजगारके पीछ या सैर करनके लिये आते थे, जिनमें से कुछ उसके स्थायी ग्राहक ही नहीं बन गये, बल्कि ब्याह का प्रलोभन देन लगे। स्त्रियोंकी जहाँ कमी हो, वहाँ उनका मूल्य बढ़ जाता है । एक तरुण दर्जी उसके यहाँ बराबर आने-जाने लगा । उसने जब पहले ब्याहका प्रस्ताव किया, तो रूपीन इन्कार तो नहीं किया, किन्तु वह विश्वास नहीं कर सकी । अब वह ज्यादा उतावली हो उठी [illegible] बीमारी और उससे भी ज्यादा जवानीके हाथसे निकल

हमेशा सताया करता था। उस साल की गर्मियों में दर्जी बराबर उसके यहाँ आता रहा और जाड़ोंमें नीचेके नगरमें ले जानेके लिये तैयार हो गया।

रूपी फिर उन्हीं नगरोंमेंसे एकमें गई, जिनके चकलोंमें वह फेरा लगा चुकी थी। दर्जीने बड़ी खातिरसे रक्खा। उसके घरवाले कुछ मामूली-सा विरोध करते रहे, लेकिन वह जानते थे, कि अपनी जाति की कन्याको पानेकी हमारे पास हैसियत नहीं है, इसलिये उन्होंने भी अपनी मूक सहमति दे दी। रूपी की माँसे जब कोई पूछता, तो वह बड़े तपाकके साथ कहती—ससुराल गई है।

जाड़ों को बिताकर गर्मियों में वह फिर मधुपुरी लौट आई। दर्जी इस साल नहीं आया, क्योंकि उसकी दूकान नीचे अच्छी चलने लगी और मधुपुरीमें जरूरतसे अधिक दर्जी आकर बैठ गये थे। रूपीको देखने ही से मालूम होता था, कि दर्जीने उसको बहुत अच्छी तरहसे रक्खा था। उसके गालोंपर फिर सुर्खी आ गई थी, मांस भी बढ़ गया था, आँखें जो पहले दबी-दबी रहती थीं, वह अब उभड़ी और चमकीली हो गई थीं। दर्जीने उसे अच्छे कपड़ेका सलवार और दुपट्टा बना दिया था। एक सुन्दर ओवरकोट उसके शरीर की शोभा बढ़ा रहा था। दर्जीने सोचा था, ठण्ढी जगहकी स्त्री नीचेकी गर्मीको एकाएक बर्दाश्त नहीं कर सकती, इसलिये उसके खर्च-वर्चका इन्तजाम करके मधुपुरी भेज दिया।

लेकिन, मधुपुरीमें आकर तो उसे अपने उसी परिवारमें रहना था, उसी मधुशालामें उठना-बैठना था, जिसमें उसकी माँ मधुबाला बनकर रहती थी। शराब और रूप दोनोंके ग्राहक वहाँ बराबर आया करते थे। माँ कैसे पसन्द करती कि हाथ में आई लक्ष्मी को लौटाया जाय! रूपी के पहले के कितने ही घनिष्ठ ग्राहक उसके रूपके नये निखारको देखकर कैसे चुप बैठ सकते थे? वह सोचने लगी, मैंने यहाँ आकर भूल की। लेकिन जब उसे यह बात साफ-साफ समझ में आने लगी

तब तक नीचे लू चलने लगी थी—अखबारोंको पढ़ सकती तो देखती कि वहाँ ११२ और ११५ डिग्री की गर्मी है। ऐसी लू में वहाँ जाकर कोई पहाड़ी बच नहीं सकता, यह वह जानती थी, तो भी उसने अपने दर्जी पतिको चिट्ठियाँ लिखवाई कि आकर ले जाओ। पर, वह इस तरहका खतरा मोल लेनेके लिये तैयार नहीं था। रूपी मुश्किलसे एक महीने तक अपनेको बचा पाई। इसमें भी किसी न किसी बहानेसे कई बार उसको अपनी माँ और सौतेले बाप की झिड़कियाँ खानी पड़ीं। सबने मिलकर फिर उसी खड्ड में उसे ढकेल दिया।

गर्मियाँ बीतीं, वर्षा शुरू हो गई। ढाई-तीन महीन आये हो गये थे। पैर भारी हैं यह देरसे मालूम हुआ। उसकी और उससे भी अधिक उसकी माँ की इच्छा थी कि दर्जी जल्दी आकर ले जाय। दर्जी की चिट्ठियाँ बराबर आती थीं और वह अपने प्रेमको प्रदर्शित करनेके लिए कभी-कभी सिनेमाके गानेकी कुछ पाँतियाँ भी उद्धृत कर देता। अचानक एक बार उसने अपनी चिट्ठीमें लिखा—मेरे माँ-बाप तुम्हें लाना पसन्द नहीं करते। रूपीके पैरसे धरती निकल गई। अब क्या किया जाय ? माँ के सामने वह हमेशा दबती रहती थी, लेकिन अबकी उसने उसे बहुत फटकारा—मैं दलदलसे निकल चुकी थी, तुमने मुझे अपने लोभके लिये फिर गड्ढेमें ढकेला। दर्जीकी इन्कारसूचक चिट्ठी मिली। उसने जब उसे पढ़वाकर सुना, तो वह अपनेको सँभाल न सकी और फूट-फूट कर रोने लगी।

उसकी माँकी मधुशाला यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे एक गुप्त चीज़ थी, लेकिन अन्तर्जगत्के लोग उसे अच्छी तरह जानते थे। रूपीके 'ससुराल' से लौटकर आनेकी खबर जहाँ पुराने भँवरोंको लगी, वहाँ इनके मँडराने और फूल सूँघनेकी गन्ध कुछ ऐसे लोगों को भी लग गई, जो दर्जी के परिचित थे। उन्होंने ही चिट्ठीमें सारी बात उसके पास लिख दी थी। यहाँ बैठी-बैठी झूठी-सच्ची सफाई पेश करना भी रूपीके लिये आसान नहीं था। फिर उस सफाई—

मानता ही कौन ? तो भी उसने गिड़गिड़ाकर एक पर एक चिट्ठियाँ लिखीं। दर्जी का दिल नरम हुआ। शायद वह यह भी समझता था, कि यदि यह स्त्री हाथसे गई; तो हमेशाके लिये मैं अनव्याहा ही रह जाऊँगा। एक दिन वह माँ की मधुशालामें पहुँच गया। भीतरसे शंकित होकर भी रूपीके मनमें बड़ा संतोष हुआ। उसने किसी बहाने जल्दी चलनेके लिये कहा।

:o: :o: :o:

माँ ने लड़कीको दर्जीके साथ भेज दिया और विना पूछे ही आसपास के लोगों को कहना शुरू किया—मेरी बेटी ससुराल चली गई। उसने उसके पास चिट्ठी भी लिखी, लेकिन महीनों कोई जवाब नहीं आया। एक दिन देखा, कि रूपी फिर उसके घरमें आ गई है। दर्जी उसे वहाँ छोड़ जरा भी न ठहर चला गया। रूपीके चेहरे पर खून नहीं था। मालूम होता था, कई महीनोंसे बुखारमें पड़ी थी, आँखें भीतर धँस गई थीं। दर्जी भलेमानुस था, इसे वह माननेके लिये तैयार थी। उसने जो भी जेवर-कपड़े उसके लिये बनवा दिये थे, उनमें से किसीको नहीं लौटाया। वस्तुतः वह माँ-बाप से लड़-झगड़कर उसे अपने पास रखनेके लिये तैयार था। लेकिन, जल्दी ही मालूम हो गया, कि उसके तो पाँच महीनेका गर्भ है। पाँच महीने क्या उससे भी पहलेसे रूपी उसके पास नहीं थी। वह कैसे मान लेता कि यह गर्भ उसका है। इतनी कड़वी घूँट पीनेके लिये उसका समाज तैयार नहीं हो सकता था। उसके समाजमें किसी भी कुलसे कन्याको ले लेना वश था, लेकिन एसी अवस्थामें नहीं। तो भी उस ईमानदार दर्जीने उसका अनिष्ट नहीं करना चाहा। किसी डाक्टरसे मिलकर या किसी दूसरी तरह गर्भ गिरवा दिया। दो-तीन महीनेका होता, तो शायद स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु गर्भ आधी अवधि पूरी कर चुका था, इसलिये जब रूपी मधुपुरी लौटी, तब भी रक्तस्राव हो रहा था।

निकलने का मौका मिला था, और कितने सालोंके प्रयत्न के बाद। अब क्या फिर कोई उस दर्जी जैसा उसे मिलेगा ?

मधुपुरी के लिए यह अकेली रूपी नहीं है। यहाँ और भी कितनी ही रूपियाँ अपने जीवनको बर्बाद कर चुकी हैं। जब हम मधुपुरीके सौन्दर्यकी प्रशंसा करते नहीं थकते, उस समय हमें नहीं ख्याल आता, कि सौन्दर्यको पैदा करनेके लिये कितनोंको नर्क-कुण्डमें पड़नेके लिए मजबूर होना पड़ा।

⊙

डोरा

"लड़की, भी बीमार है। खानेको भी कुछ नहीं। तुम भी अम्माजी डाट रही हो!"—रोते हुए एक समयसे पहिल अधेड़ हुई स्त्रीने बड़े करुण स्वरमें कहा, जिससे मालूम होता था, कि वह दुःखके समुद्रमें नाक तक डूबी हुई है।

"उस दिन तेल लाये थे, अभी सारा खतम हो गया?"—इसी बीच दूसरे सम्बन्धीने कहा।

"माफ करो"—गीली आँखोंको एक ओर फेर कर उसने दूसरे पुरुषको जवाब दिया। इसी समय कंकालमात्र अवशिष्ट उसकी तीसरी लड़कीको एक बन्धु अस्पतालसे उठाय ला रहे थे।

२८-२९ वर्ष की बात है। वर्षों में शायद वैसा अन्तर न मालूम होता, किन्तु दाल-रोटी की चिन्ता और दूसरी बातोंमें तबसे एक महायुग बीत गया है। गोपालू मधुपुरीका एक बड़ा होशियार खानसामा और रसोइया था। शुद्ध अंग्रेजोंके क्लबमें इसी कारण उसे ५० रुपया महीना मिलता था—हाँ, ५० रुपया, अर्थात आज का सवा सौ रुपया, और ऊपर से हरेक ग्राहक और मेहमान कुछ टिप (बखशीश) भी दिया करता था। गोश्त देनेवाला गोपालू की यदि कुछ पेट-पूजा न करे, तो वह उसके मांस को निकम्मा कहकर दूसरे को लगवा सकता था—रोज दो बकरे का खर्च था। सागवालेको भी क्लबके बड़ खानासामाकी खुशामद बातोंसे करके छुट्टी नहीं मिल सकती थी। फिर शराब, चटनी, टिनके मांस और दूसरी जितनी चीजें क्लब की भोजनशाला में जातीं, उन्हें निकालनेवाला गोपालू ही था। गोपालू न चोर था, न झूठा। पहाड़ी आदमी उस समय आजसे भी ज्यादा ईमानदार होते थे। लेकिन, [illegible] ाकी

हर जगह दस्तूरी बँधी होती है,जिसके लेनेमें वह कोई दोष नहीं समझता। क्लबके मैनेजर ऐंग्लो-इंडियन साहबको भी इसमें कोई एतराज नहीं था। उनकी शिक्षा-दीक्षाके अनुसार तनखाहसे अधिककी आमदनी अवैध हो सकती थी, लेकिन वह भी तो दस्तूरीमें शामिल थे। और फिर यह एक आल्प्स क्लबकी बात नहीं थी, सारी मधुपुरीमें यह चला आता था।

गोपालू बंगलेके पर-जैसी धुली पोशाकमें रहा करता। छोटे-बड़े दोनों सीजनोंके समय मधुपुरीमें उतनी ठण्ढ नहीं रहती, वर्षामें यदि कभी भारी वर्षा के साथ-साथ तेज हवा भी चलती रही, तो माघ-पूस जरूर याद आने लगता था, और उसके लिये गोपालूके पास जाड़ोंकी गरम पोशाक थी ही। दूसरे होटलों, क्लबों और दूकानोंकी तरह आल्प्स क्लबका कारबार मई से अक्तूबर तक कम-वेसी चलता रहा। उसके सैलानियों के साथ-साथ नौकर-चाकर भी विदा हो जाते, दूकानें भी अधिकांश तालोंमें कपड़े लपेट मोहरबन्द हो जातीं। लेकिन आल्प्स क्लब जैसे स्थानोंमें सामान और घरकी देखभालके लिए एक चौकीदारके अतिरिक्त गोपालू जैसेको बारहों महीने रहना पड़ता। जरूरत पड़ती, तो वह मजदूरोंको रखकर कुछ छोटा-मोटा मरम्मतका काम भी करवा लेता। वैसे जाड़ोंमें ही मधुपुरीके मकानोंमें कोई नया काम किया जाता है। मकान प्रायः सभी किरायेके हैं, और मरम्मत कराना मकान-मालिकका काम है। यदि फर्नीचर, पर्दे, पार्टीशनके सम्बन्ध में कोई नया काम करना होता, तो उसके लिये मैनेजर अप्रैलहीमें यहाँ पहुँच जाता। छ महीनेके लिये सूने आल्प्स क्लबका मैनेजर गोपालू था। इस समय उसे अपनी बँधी तनखाह पर गुजारा करना पड़ता। उस समय अंग्रेजोंकी तपी थी, मधुपुरी सोलहों आने उनकी नगरी थी। क्लबमें आनेवाले मेहमान अगर तीन-चार महीना पहले अपनी जगह रिजर्व न करा लें, उनके लिये कमरा मिलना मुश्किल था। आधे मेहमान तो,बल्कि पहले ही साल एडवान्स दे जाते थे।

गोपालू पहाड़ी राजपूत था। काला अक्षर भैंस बराबर ही कहना चाहिये, क्योंकि वह बड़ी मुश्किलसे हिन्दीमें अपना हस्ताक्षर कर सकता था। उसके गोरे सुन्दर चेहरे और छरहरे बदनपर बेदाग नई-सी पोशाक देखकर कोई कह नहीं सकता था कि वह शिक्षित नहीं है। लड़कपनसे ही वह इसी क्लबमें आकर नौकरी करता। उसे प्रथम महायुद्धके दिन भी याद थे, जिसके समाप्त होते-होते उसकी रेख भिनने लगी थी। बचपनही में मधुपुरीके उच्च-समाजके सम्पर्कमें रहनेके कारण वह उसका एक अंग हो गया था। हर समाजके नौकर भी उसीके अनुरूप होते हैं। यहाँ रहते-रहते उसकी घनिष्ठता इसी होटलके बड़े खानसामा-परिवार से हो गई, जिसके घरमें एक तरुणी लड़की थी। गोपालू हिन्दू और वह खानसामा ईसाई था। था वह भी पहाड़ी ही। अन्तमें अपने बड़े खानसामाकी लड़कीसे व्याह करनेके लिये वह भी ईसाई हो गया। नाम गोपालूका गोपालू रहा। सास-ससुरकी एक ही लड़की थी। ससुरका यही ध्यान था कि गोपालू एक दिन मेरी जगह ले। उसने साहेबोंकी खानेकी एक-एक चीज़को सिखलाकर उसे निपुण कर दिया। दो-तीन वर्ष बाद वह अपने ससुरका सहायक खानसामा बन गया। तीन-चार वर्ष बाद ससुर चल बसा, सास कितने ही वर्षोंतक और जिन्दा रही। अब गोपालू आल्स-क्लबका बड़ा खानसामा था। उसके एक लड़की हुई, और भी बच्चे हुए, लेकिन वह मर-मर गये। पहली लड़की होनेके कारण उसपर माँ-बाप का असाधारण प्यार था। गोपालू उसे अपनी [illegible] गिर्जेमें ले गया। शायद पादरी साहबकी मेमका नाम डोरोथी था, उन्होंने वही नाम इस लड़कीको भी दे दिया। पर, हिन्दुस्तानी मुँहमें पड़कर उसका कोई अर्थ नहीं मालूम होता था। [illegible] कभी पादरीकी मेमने डोरा कह दिया, और यही नाम रह गया, लोग डोरा-सूतके अर्थको समझते ही

डोरा घरकी इकलौती सन्तान थी। माँ-बाप और नानी भी उसको फूलकी तरह आँखोंपर रखना चाहते। वह फूल जैसी थी भी। माँ और बाप दोनों ओर शुद्ध खस-रक्त होनेके कारण वह बिल्कुल गोरी,नाक नुकीली,सिर लम्बा, और चेहरा सुन्दर कहलानेके अनुरूप था। क्लबके बड़े खानसामाके घरमें इस वक्त लक्ष्मीका वास था। सीजनमें खा-पीकर हजार रुपयेसे अधिक ही बच जाते और जाड़ोंमें भी पूरी तनखाह मिलती। डोराको बड़े सुखसे उन्होंने पाला। जब वह पाँच-छ वर्षकी हुई, तो उसे पढ़ानेके लिये नये पादरी साहबकी ओरसे आग्रह हुआ और गोपालूने उसे पादरियोंके एक स्कूलमें बैठा दिया। इसी मधुपुरीमें तीन वर्षसे लेकर सयाने तकके अंग्रेज लड़के-लड़कियोंके लिये कितने ही कान्वेन्ट और स्कूल थे, जहाँ सारे हिन्दुस्तानके बच्चे रहकर पढ़ते थे। गोरे साहेब ही नहीं, काले साहेबोंको भी भारी खर्च देनेपर अब कुछ संख्यामें अपने लड़कोंको भेजनेकी इजाजत दे दी गई थी, इसलिए उनके लड़के भी इन कान्वेन्टों (साधुनी शिशुशालाओं) और स्कूलोंमें पढ़ते थे, और उनमेंसे अधिकांश ईसाई नहीं थे। पर ईसाई होनेसे गोपालू परिवार भद्र-वर्गमें तो सम्मिलित नहीं हो सका था। वह खानसामा था और उसकी आमदनी खानसामों जितनी ही थी, साथ ही उसका सपना भी खानसामोंसे बढ़कर नहीं हो सकता था। सम्भव है, डोराकी जगह यदि कोई लड़का होता, तो उसके पढ़ानेके लिये गोपालू ज्यादा ध्यान देता। जो भी हो उसने अपनी लड़कीको ईसाइयोंके एक छोटेसे स्कूलमें पढ़नेके लिये भेज दिया। लेकिन, न घरमें पढ़ने-लिखनेका वातावरण था, और न डोरा उतना दबाव माननेके लिये तैयार थी, माँ और नानी आधे दिलसे ही उसको स्कूल भेज रही थीं। डोरा पहले साल तो बराबर जाती रही, इसके बाद दो दिन स्कूल जाती, तो तीन दिन मोहल्लेकी लड़कियोंके साथ खेलनेमें लग जाती। दस वर्षकी होते-होते मालूम

हो गया, कि उसे पढ़नेकी न इच्छा है न आवश्यकता। माँ-बाप और बुढ़िया नानी हर इतवारको गिर्जेमें जाते। मधुपुरी में ईसाइयोंके भगवान्के घरमें भी रंग-भेद था, —कितनी ही सड़कें एक तरहसे हिन्दुस्तानियोंके लिये बन्द थीं, यदि कोई काला साहब भी उधरसे गुजरता, तो उसे ठोकर खाने और गाली सुननेकी नौबत आती। सड़कों, होटलों और क्लबोंमें रंग-भेद चलता था—आल्प्स क्लबका मेम्बर कोई हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता था, न उसे वहाँ ठहरनेके लिये जगह मिल सकती थी। यहाँके हिन्दुस्तानी ईसाई यही बैरा और खानसामा थे। उनके अतिरिक्त थोड़ेसे ऐंग्लो-इंडियन थे, जिनका रंग अगर गोरोंके समीप रहा, तो वह गिर्जेकी पूजामें उनके साथ शामिल हो सकते थे। रंगके अतिरिक्त भाषाकी भी कठिनाई थी। अंग्रेजोंके भगवान् अंग्रेजी भाषामें ही गीत और प्रार्थना समझ सकते थे, और कालोंके भगवान् कालोंकी भाषामें। इसलिये भी डोराके पिता गोपालू जैसे ईसाई हिन्दीमें पूजा-प्रार्थना होने वाले गिर्जेमें ही जाते थे। ऐसे गिर्जे एक ही दो थे। जिनमें बहुत भक्ति हो, वही मधुपुरीके ओर-छोरसे हर इतवारको इस गिर्जेमें पहुँच सकते थे। लेकिन, गोपालूका क्लब उससे दूर नहीं था, और कहा जा सकता है, कि उस परिवारमें भक्ति भी अधिक थी, इस प्रकार वह हर इतवारको वहाँ हाजिर हुआ करता था।

डोरा स्कूलमें जानेमें चाहे भले ही जान चुराती हो, लेकिन गिर्जेमें जानेके लिये इतवारको वह बड़े तड़के ही उठ जाती। उस दिनके लिये उसकी खास पोशाक होती, बाल सँवार करके उसमें लाल फीते बाँध दिये जाते, मुँह-हाथपर पौडर लगा दिया जाता, पैरोंमें नया बूट होता, जो केवल इतवारको ही इस्तेमाल किया जाता। उसकी माँ तथा नानीमें बहुत आधुनिकता नहीं थी, और न उन्हें क्लबमें होनेवाली मेहमान महिलाओंके बनाव-शृंगारको देखनेके

खनेका मौका मिलता। मेमोंको अपने बच्चोंके लिये आयाकी ज़रूरत होती थी, लेकिन एक तो वह ऐसी आया रखना चाहतीं, जो कि उनके बच्चोंसे अंग्रेजीमें बोले, जिसमें उनके सुकुमार-मति बच्चे काले आदमियोंकी बोली और उनके रीत-भातको सीख न जायें। आया अधिकांश काली ही होतीं, ऐंग्लो-इंडियन आयाको तनखाह ज्यादा देनी पड़ती, इसलिये उनको रखनेकी हिम्मत बड़े-बड़े साहब ही कर सकते थे। गोपालूको अपनी स्त्रीको आया बनानेकी इच्छा भी नहीं हुई। आसपासकी और लड़कियोंको जिस तरह बनाया-सँवारा जाता, डोराको भी उसी तरहके गुलाबी फ्राक और दूसरी चीजोंसे सजाकर वह गिर्जा ले जाते। अपने पहाड़ी पूर्वजोंसे वरासतके तौरपर डोराने मधुर कंठ पाया था। गिर्जेमें उसे भजन गानेका अवसर मिलता। ईसाई-धर्ममें दीक्षा देनेवाले सभी बड़े-बड़े पादरी गोरे थे, उन्हें काले लोगोंका संगीत प्रिय भी नहीं था। प्रिय तो नाम भी नहीं था, यह तत्कालीन पादरीकी उदार हृदयता थी, जो कि गोपालूका नाम डेविड या जेम्समें नहीं बदला गया, और वह गोपालसिंह ही बना रहा। गिर्जेमें गीत तो था "ईसुमसी मेरे प्राण बचैया" लेकिन, उसे गाये जाते सुनकर साधारण हिन्दुस्तानीके लिये यह समझना मुश्किल था कि गीत हमारी भाषाका है। पादरी साहबकी मेम भी गीत पढ़ानेके लिये शामिल होतीं और जो उनसे नहीं बन पाता, उसे गिर्जेका पियानो ठीक कर देता, इस प्रकार "ईसुमसी मेरे प्राण बचैया" की तान बिलकुल अंग्रेजी गान जैसी हो जाती। डोरा अपने मधुर कंठसे यूरोपीय तानमें उसे बड़े मनसे गाती। गिर्जा जानेवाले सभी उसके गानेकी तारीफ करते। उसे इससे क्या मतलब कि हिन्दुस्तानी भाषाके गानेकी वहाँ रेड़ मारी जा रही है या हिन्दुस्तानी संगीतका अपमान किया जा रहा है।

:o: :o: :o:

डोरा १५ वर्ष पूरा करके अब १६वें वर्षमें कदम रख रही थी। वह अपने रंग-रूप दोनोंमें सुन्दरी थी, फिर इस आयुके लिये तो सुजानोंने कहा है "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे गर्दभी ह्यप्सरायते।"

द्वितीय महायुद्ध छिड़े तीसरा वर्ष हो रहा था। युद्धने दिल खोलकर मधुपुरीको निहाल कर दिया। साधारण तौरसे आनेवाले अंग्रेज तो आते ही थे, अब युद्धके सैनिक भी बड़ी संख्यामें यहाँ रहते थे, और कितने ही तो बारहों महीनेके मेहमान थे। मधुपुरीके भाग्यके साथ आल्प्स-क्लबका भाग्य बँधा था और उसके साथ गोपालूको खूब आमदनी थी। गोपालू का परिवार बड़े आरामकी जिन्दगी बिता रहा था। बारह वर्ष पार करते ही गोपालूने अपनी लड़कीका स्कूल जाना बन्द कर दिया था। ४–५ वर्षमें मुश्किलसे वह तीसरे दर्जेतक पहुँच पाई थी। उसकी पढ़नेकी कोई इच्छा नहीं थी। नानी बेचारी चार वर्ष पहले ही मर चुकी थी। माँ-बाप समझते थे कि सभी दिन इसी तरह आराम और निश्चिन्तताके होंगे, इसलिये हमारी डोराको अधिक पढ़नेकी क्या आवश्यकता?

गोपालू ईसाई हो गया था, लेकिन उसके सारे संस्कार वही पुराने थे। यदि कोई उसे छोटी जातिका कह देता, तो वह लड़नेके लिये तैयार हो जाता। वह अपनी जात-पाँतको अपने साथ ले आया था। लड़ाईके समय जब शिक्षित यूरोपियन ही नहीं, बल्कि फौजी गोरे बड़ी संख्यामें मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमने लगे, तो उसे बड़ा खतरा मालूम होने लगा, और वह डोराको अकेली घरसे बाहर नहीं होने देता। यह ऐसा समय था, जब कि कितने ही ऐंग्लो-इंडियन माता-पिता अपनी श्वेतांग लड़कियोंको दामाद ढूँढ़नेके लिये आग्रहके साथ भेजते थे। यदि किसी अमेरिकन या अंग्रेज सैनिकसे व्याह हो गया, तो हमारी लड़की धन और जाति दोनोंमें बड़ी बिरादरीकी हो जायेगी—उनके दिल में यह ख्याल घुसा था। पर गोपालूको डोराके लिये बराबर चिन्ता बनी रहती थी। डोरा

उन ऐंग्लो-इंडियन लड़कियोंसे बहुत अधिक सुन्दरी थी। चिन्ताके मारे गोपालू इतना परेशान था कि उसे लड़कीके व्याहकी जल्दी पड़ी हुई थी।

जल्दीका काम शैतानका है—यह कहावत ठीक ही है। जल्दी-जल्दीमें डोराके योग्य दामाद मिलना मुश्किल था। जो ईसाई तरुण कुछ पढ़-लिख मैट्रिक पास हो गये थे, वह रूप होने पर भी अनपढ़ खानसामाकी अनपढ़-सी पुत्रीको व्याहनेके लिये तैयार नहीं थे। उस साल अपने हितमित्रोंके साथ गोपालूने मधुपुरीके अपने वर्गके सभी ईसाई-तरुणोंकी खोज की। अन्तमें उसे एक वड़े होटलमें एक गोआनी तरुण मिला। यदि वह अच्छी तरहसे पूछ-ताछ करता, तो होनेवाले दामादको समझ सकता था; पर, उसे तो जल्दी पड़ी थी। अगर इतनी मीन-मेख निकालता, तो डोराको अब भी कुँवारी रखकर खतरेको मोल लेना पड़ता। उसके अपने क्लबके जमादारकी लड़कीके साथ एक ऐसी दुर्घटना हाल हीमें हुई थी, जिसके क़ारण वह और भी आशंकित हो गया था। गोआनी तरुणने लड़कीको देखा, तो वह उसपर मुग्ध हो गया। लेकिन, व्याह करनेके समय फिर कठिनाई उपस्थित हो गई। गोआनी रोमन कैथलिक था, और डोराके माँ-बाप प्रोटेस्टेन्ट। रोमन कैथलिक लड़का-लड़की कैथलिकसे भिन्नसे तभी शादी कर सकते हैं, जब कि वह कैथलिक बन उसी सम्प्रदायके अनुसार शादी करे। शायद लड़का इसके लिये जिद्द नहीं करता, लेकिन उसके चचाका इसके लिये बहुत आग्रह था। गोपालूके लिये कोई बात नहीं थी। राजपूतसे ईसाई बननेमें एक बार उसको भारी हिचकिचाहट जरूर हुई थी, क्योंकि तब उसे अपने परिवार और नातेदारोंसे हमेशाके लिये सम्बन्ध तोड़ना पड़ रहा था, और वह दो रस्सियोंके बीच कितने ही महीनोंतक झूलता भी रहा। पर, जब वह उन सबसे नाता-

गोता तोड़ कर ईसाई बन चुका, अपने जान पतित हो चुका, तो प्रोटेस्टेन्ट हो या रोमन कैथलिक, इसमें उसे क्यों भेद मालूम होता।

डोराका व्याह रोमन कैथलिक चर्चमें हुआ, जहाँ सवेरेके वक्त गोरे भक्त-भक्तिनोंकी पूजा-प्रार्थना चलती और शामको काले लोगोंकी। उस दिन गोपालूने लड़कीके व्याहमें अपने सारे अरमान निकालने चाहे। उसकी अपनी श्रेणीके लोग जितनी कीमती-से-कीमती पोशाक दुलहिनके लिये बनवा सकते हैं, उसने वैसी बनवाई। विशेष शृंगार करनेके लिये एक शिक्षिता भारतीय ईसाई महिला मिल गई। गोपालूके ससुरके समय पादरी लोग अपने भारतीय शिष्य-शिष्याओंके नाम हीमें नहीं, बल्कि पोशाकमें भी औरोंसे भेद रखना चाहते थे—स्त्रियाँ मेमोंकी नकल करती साया पहनतीं। लेकिन, डोराके समय अब उस तरहका आग्रह नहीं था, और ईसाई महिलायें अपने देशकी दूसरी स्त्रियोंकी तरह साड़ी पहना करती थीं। डोराको भी रेशमकी मूल्यवान् सफेद साड़ी पहनाई गई, पैरोंमें सफेद बूट और सिरके बालोंको ढाँकनेके लिये सफेद लम्बी जाली थी, हाथमें बड़े-बड़े गुलाबोंका गुलदस्ता जाड़ा हो जानेके कारण नीचेके शहरसे मँगाना पड़ा था। विवाहके उपलक्षमें मधुपुरीके सारे हित-मित्र गिर्जेमें जमा हु;। डोराके सुन्दरी होनेको पहलेसे भी सभी स्वीक.र करते थे, लेकिन आज तो वह मानवी नहीं, कोई अप्सरा मालूम होती थी। सफेद पोशाक काले रंगको और काला और गोरेको और गोरा बनाती है। डोरा गोरी थी, बिना रूजके भी इस समय उसके गाल आरक्त थे। चर्चमें उपस्थित लोगोंमें वह तरुण भी था, जिसने उसकी पढ़ाईकी कमीके कारण व्याह करनेसे इन्कार कर दिया था। सचमुच ही वह आज हाथ मलकर पछता रहा था। गोआनी काला नहीं था, लेकिन उसे सुन्दर तरुण नहीं कहा जा सकता था। अप्सराको गदहेके गले बाँध दिया गया—यही सबकी राय थी। पर, गोआनी तरुण यदि

हिन्दू होता, तो कहता मेरे पूर्वजन्मका फल है, जो मुझे ऐसा गुलाव मिला। ईसाई पूर्व जन्मको नहीं मानते, वह मुसलमानों और यहूदियोंकी तरह हरेक भले-वुरे भोगको भगवानकी महिमा वतलाते हैं। व्याहके वाद गोपालूने अपने यहाँ एक दावत दी। भोजनके जितने प्रकार वह अपने आकाओंके लिये तैयार करता था, उन सबको उसने अपने हित-मित्रोंके लिये तैयार किया। शरद्का सीजन खतम हो रहा था, पर क्लव तो जाड़ोंमें भी खाली होनेवाला नहीं था। उसमें कितने ही सैनिक अफ़सर स्वास्थ्य-लाभके लिये ठहरे थे। इस प्रकार गोपालूको खर्चेका डर नहीं था। अच्छी-अच्छी शराव मेहमानोंको पिलाई गई। क्लवके मैनेजर ऐंग्लोइंडियन साहेव चाहे अंग्रेजोंके सामने अछूत ही समझे जाते हों, लेकिन वह काले ईसाई और सो भी खानसामाके मेहमानोंके साथ नहीं वैठ सकते थे। उनको और उनकी मेमके लिये गोपालूने अलग खान-पानका प्रवन्ध किया था। कुछ मनचली ईसाई तरुणियोंने जशनको और अच्छी तरह मनानेके लिये गाना भी आवश्यक समझा, लेकिन नाचना अभी उनके समाजमें स्वीकृत नहीं था। गानेमें भी यदि सिनेमाका प्रचार न हो गया होता, तो शायद उन्हें "ईसुमसी मेरे प्राण-वचैया" की ट्यूनमें ही गाना पड़ता।

दामादका चचा जिस होटलमें रहता था, जाड़ोंके लिये आंशिक तौरसे वन्द हो गया, और कितने ही नौकरोंको छुट्टी मिल गई, जिनमें चचा भी था। उसने भतीजे और उसकी वहूको साथ चलनेके लिये कहा, लेकिन गोपालू अपनी इकलौती वेटीको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। अन्तमें उसने दामादको भी अपने ही घर वुला लिया। शायद वह सोचता था, जैसे मैंने अपने ससुरका स्थान सँभाला, वैसे ही दामाद भी मेरी जगह लेगा। दूर रहता, तो शायद अभी और कितने ही दिनोंतक गुन ढँके रहते, लेकिन अव जव वरावर साथ रहना था, तो किसी वातको कैसे छिपाया जा

सकता ? वह एक नम्बरका शरावी था । जो थोड़ी सी शराव गोपालू उसे देता, वह उसके लिये पर्याप्त नहीं थी । वह कहता, मैं तो वोतल-की-वोतल वराण्डी, व्हिस्की और शैम्पेन पीता हूँ । यह विल्कुल झूठी वात थी । इतनी महँगी शराव उसे मयस्सर नहीं हो सकती थी और न उनसे उसकी तृप्ति होती थी । उसे तो सिर चकरा देनेवाला देशी ठर्रा चाहिये था । वीवीको डरा-धमकाकर कुछ पैसे ले, वह अपने उसी होटलवाले छोरपर चला जाता, जहाँ पास हीमें गाँववाले अपने घरोंमें कड़ी शराव चुवाया करते । शरावमें धुत, अँधेरा होते वहाँसे चलता । रास्तेमें विना एक-दो जगह गिरे-पड़े वह घर नहीं पहुँचता था । घर पहुँचते ही फिर तूफान मचाता, वीवीको अकारण पीटता और गाली देता, सास और ससुरके भी नाकमें दम कर देता । यह महीनेमें एकाध दिनकी वात नहीं थी, हफ्तेमें कितनी ही वार वह ऐसा करता । सवसे ज्यादा दु:ख गोपालूको था । अपनी लड़कीके लिये उसने गलेकी फाँसी मँगा ली थी । लड़कीने दो हफ्ते भी अपने सोहागको सुखपूर्वक नहीं भोगा, और यह नरककी आग उसके लिये तैयार हो गई । गोपालूका क्वार्टर क्लब के कमरोंसे वहुत दूर नहीं था । शराव पीकर गोआनी जिस तरह चिल्लाता, उससे डर था कि क्लव के मेहमानोंकी नींद न उचट जाये । आते ही उसे घरके भीतर कर दरवाजोंको पूरी तौरसे वन्द कर लेता, जिसमें आवाज वाहर न जाये । गुस्सेका जवाव गुस्सेमें देना अनर्थकारी होगा, यह ख्याल कर गोपालू उसे वहुत पुचकारकर मीठेसे समझाना-वुझाना चाहता । जिसका फल यह होता कि अगले दिनके लिये दामादको कुछ पैसे मिल जाते ।

गोपालूके लिये यह भारी अभिशाप था । एकाध रात दामाद रास्ते हीमें कहीं पड़ा रहता । यदि आने-जानेवाला कोई परिचित होता या दया दिखलाता, तो वह उसे कुछ दूरतक पहुँचा देता, नहीं तो वह वहीं सड़ककी मोरीमें तवतक पड़ा रहता, जवतक

[illegible] न हो जाता, फिर बड़ी रातको ससुरके घरमें [illegible] यही मनाने लगा, वह वहीं खतम हो जाता, या [illegible] बघेरा उठा ले जाता, तो ही अच्छा। लेकिन [illegible] बड़े होशियार हैं। वह आदमीके साथ वैर ठाननेके भयानक परिणामको जानते हैं। ससुरका परिवार जितना ही दबता जाता, उतना ही दामाद शेर होता जा रहा था। गोपालू सोचता— यदि मेरा क्वार्टर यहाँसे कहीं दूर होता, तो बच्चाको सिखला देता।

मार्चका महीना आया। जाड़ा पीछे छूटता जा रहा था। वैसे मधुपुरीके लिये मौसिमके बारेमें बहुत पक्का नहीं कहा जा सकता। यदि वर्षा और हवा दो-तीन दिन लगातार रही, तो हिमवृष्टि हो सकती है। जाड़ेके बाद जब वसन्त आने लगता, तो मधुपुरीके स्थायी निवासी मैदानके लोगोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द मनाते हैं। लेकिन गोपालूके घरसे तो आनन्द और खुशी उसी दिन विदा हो गई, जिस दिन दामाद घरमें आया।

:o: :o: :o:

१९४७ का अगस्त आया। अंग्रेज सदाके लिये भारतसे विदा हुए, मधुपुरी विधवा हो गई। मानो वैधव्यको प्रमाणित करने हीके लिये उस सालके अगस्तमें यहाँपर भी उथल-पुथल हुई। विभाजनके पहले हीसे लाहौर और पश्चिमी पंजाबके दूसरे शहरोंके आदमी यहाँ भरे हुए थे। रोज रेडियोसे कान लगाये सुनना चाहते थे, कि लाहौर किधर गया। लाहौर पाकिस्तानमें जायेगा, इसमें क्या कोई सन्देह था? उसके आस-पासके गाँव मुसलमानोंके थे। शहरमें अगर हिन्दुओंका बहुमत होता, तो वहाँ हिन्दुस्तानका एक द्वीप अंग्रेज थोड़े ही स्थापित करनेवाले थे। हिन्दुओंने नाकों दम करके उन्हें भारत छोड़नेके लिये मजबूर किया। मुसलमानोंने भारतकी स्वतन्त्रताके लिये संघर्ष नहीं किया, यह बात नहीं, लेकिन

अंग्रेज सारी कसर हिन्दुओंपर निकालना चाहते थे, इसलिये रायबहादुरों और सरदारबहादुरोंको अपनी अंग्रेज भक्तिपर इतनी आशा रखना दुराशा मात्र था, कि उनके पुराने आका लाहौरका पाकिस्तानको न देंगे। लाहौरके हाथसे चले जानेके साथ ही पंजाबमें हिन्दुओंके खूनकी नदियाँ बहनेकी अतिरंजित खबरें आने लगीं, जिसे सुनकर मधुपुरीमें बैठे पंजाबियोंका खून भी खौलने लगा, और दस-बीस निरपराध मुसलमानोंको उन्होंने मारकर दिल ठण्डा करना चाहा।

अंग्रेज मधुपुरीके सर्वस्वको छीन कर गये। गोपालू अब भी आल्प्स क्लबमें था, लेकिन जब क्लबमें मेहमानोंका ठिकाना न हो, तो उसका सुखी जीवन कैसे बरकरार रह सकता था। भगवान्ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और गोआनी साल भर पहले मधुपुरी छोड़कर भाग गया। नाकमें दम आनेपर गोपालूने एक दो बार उसकी अच्छी तरह मरम्मत कर दी थी। उसके जानेसे गोपालूको बहुत प्रसन्नता हुई, वही बात उसकी बीबी और डोराकी भी थी। लेकिन वह डोराको दो लड़कियोंकी माँ बना कर गया। गोपालूका हाथ तंग था। ५० रुपये अब भी उसे मिलते थे, लेकिन अब उनका दाम १५ रुपये भी नहीं था। ऊपरकी आमदनी अब नाममात्र रह गई थी। आगे क्या होगा, इसका भी कोई पता नहीं था।

चिन्ता भी रोगका कारण होती है। गोपालू जैसे अच्छे दिनोंको देख चुका था, उनके लौटने की अब आशा नहीं थी, और गृहस्थीकी कठिनाइयाँ उसे परेशान कर रही थीं। इस स्थितिमें यदि उसका शरीर घुलकर आधा रह जाये, तो आश्चर्य ही क्या? सीजन शुरू हुआ। मधुपुरी लोगोंसे भरी हुई थी, लेकिन वह थे अधिकतर पंजाबसे आये शरणार्थी। एक-एक कोठरीमें दस-दस आदमी ठूँस कर भरे हुए थे, पर बँगले और होटल वग[illegible]ली पडे थे।

अंग्रेज लड़ाई खतम होनेके बाद ही से कम होने लगे थे, और अब इस सालके जाड़ोंकी खूनखराबीको सुनकर उन्हें मधुपुरीमें सैर करनेकी इच्छा नहीं हो सकती थी। नवाब लोग अपने घरोंमें बैठे खैर मना रहे थे, उनमेंसे कितने ही पाकिस्तान जा चुके थे। अनिश्चित अवस्थाके कारण राजा और बड़े-बड़े जमींदार भी उस साल नहीं आये। आल्प्स-क्लबमें लड़ाई समाप्त होनेके बाद ही काले आदमियोंके लिये छूट हो गई, और अब तो उसके स्वामी भी वही थे। लेकिन, उसके आधे भी कमरे इस साल नहीं लगे। गोपालू पहले सीजनमें ही बीमार पड़ा। बहुत मुश्किलसे उसने अपनेको सँभालकर मई-जूनको बिताया, बरसात आते ही चारपाईपर पड़ा तो फिर नहीं उठा। दुःखोंकी दुनियाँ सदाके लिये उससे दूर हो गई।

पर, डोराको अपनी दो लड़कियों और माँको लेकर इस दुनियासे भागनेका कहीं ठौर नहीं था। खानसामाके मर जानेपर उसके परिवारको औट-हौसमें कैसे रहने दिया जाता? डोराको वह घर छोड़ना पड़ा, जिसमें उसने पहले-पहल आँख खोली थी, और जहाँ उसने शैशवको बड़े आनन्दसे बिताया था।

:o: :o: :o:

डोराकी माँ भी साल भर बाद दुःखसे मुक्त हो गई। डोराको किसी परिचितने अपने पासकी कोठरी दे दी। मधुपुरीके औट-हौस अधिकतर खाली ही रहते हैं, इसलिये मुफ्तमें कोठरी मिलना मुश्किल नहीं था। लेकिन, डोराको अपनी जिन्दगीकी नैया अपनी दोनों लड़कियोंको लिये खेना आसान न था। स्त्रीके लिये ब्याह कोई शौककी चीज नहीं है, खासकर डोरा जैसीके लिये। वह अभी २१—२२ वर्षकी थी। बापके मरनेके बाद जिस कठिनाईसे उसे गुजरना पड़ा, उसके कारण वह समयसे पहले बूढ़ी हो जाये, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन अभी उसमें शक्ति और कान्ति कुछ

बच रही थी। यदि बापको गुलाब-सी डोराके लिये प्रयत्न करनेपर भी गदहा दामाद मिला था, तो अब मारी-मारी फिरनेवाली डोरा किसी अच्छे आदमीको कैसे पा सकती थी? उसे अपनी मण्डलीके निकम्मेसे निकम्मे लोगोंकी शरण लेनी पड़ी। साहब लोगोंका वरद-हस्त अब ईसाइयोंके ऊपरसे उठ चुका था। नौकरियोंका रास्ता उनके लिये बहुत कुछ बन्द हो चुका था। मुसलमान खानसामोंमेंसे कितने ही पाकिस्तान चले गये थे, लेकिन तो भी जरूरतसे अधिक खानसामा अभी मौजूद थे, जो कम तनखाहपर भी कामके लिये मारे-मारे फिरते थे। डोराने एकका पल्ला पकड़ा। वह उसका और उसके बच्चोंका पालन-पोषण नहीं कर सका, बल्कि एक और बच्चकी वृद्धि करके साथ छोड़ गया। फिर दूसरेने भी वही किया। पाँच बच्चोंको लिय २८ वर्षकी डोरा अब किसी तीसरेका पल्ला पकड़ हुये है, जिसके चुचके हुये चेहरेको देखनेसे मालूम होता है, है कि वह कोई कोकीन खानेवाला है। बाप और माँके दिये एक-एक जेवरको बेचकर डोराने बच्चोंको खिलाया। उन्हें अपनी आँखोंके सामने तड़पते वह कैसे देख सकती थी? पहले जेवरोंपर उसने उधार लिये, फिर चिरौरी-मिनतीसे जहाँ भी उधार मिल जाता, वहाँसे लाती। लोगोंका बरतन मलती, झाड़ू देती, लेकिन छ-छ सात-सात पेट इतनेसे कैसे भरते?

डोराने अपन सारे कपड़ोंको भी बेच खाया, लेकिन नकली रेशमकी एक नीली पुरानी साड़ी और एक फटा-सा बूट अब भी उसके पास है। घरमें रहते मैला-कुचला लपेटे रहती है, लेकिन जब बाहर निकलती है, तो उसे यह पसन्द नहीं आता, कि उन्हीं कपड़ोंमें दूसरोंके सामने जाये। अब भी यदि कहीं दो-चार आने उधार मिल जाते हैं, तो इन्हीं कपड़ोंके भरोसे। इस साल बड़े [illegible] हृदय दम्पति उसके पासकी कोठीमें आकर ठहरे [illegible]

माँगनेकी आदत नहीं है, यद्यपि वह ऐसी स्थितिमें पहुँच गई है, जब कि भीख माँगना उसके लिये अनिवार्य है। भीख माँगनेकी जगह वह उधार माँगती है। उदारहृदय पुरुषसे उसने आठ आने उधार माँगे थे। वह जान गये, यह झूठ बोल रही है, उधारके पैसे लौटनेवाले नहीं हैं। यदि वह सच बोलती, या उसकी स्थितिका पता होता, तो उक्त सज्जनकी दयालुतासे वह वंचित न रहती। उन्होंने उसे दुत्कार दिया और वह अपना-सा मुँह लेकर रह गई।

डोराकी चार लड़कियाँ और १०-११ महीनेका पाँचवाँ लड़का है। इनमें कोई काले नहीं हैं, सभी गोरे-गोरे हैं, यद्यपि गरीबीकी कालिख सबके मुँहपर है। बड़ी लड़की ११ सालकी है। भूख लगनपर सभी डोराके पास आकर रोते हैं। वह खीझ जाती है, लेकिन समझती है, मेरे सिवा इनका कौन है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। वह कुमाता नहीं है, उसके दुःखोंमें वृद्धि होनेका एक यह भी कारण है। मान हो या अपमान, काम करके हो, या उधार माँगके, जैसे भी हो, वह अपने बच्चोंको पालना चाहती है। यह बच्चे अवसर पानेपर क्या हो सकते हैं, इसे कौन जानता? लेकिन, जब उनके पेटका ठिकाना नहीं, पढ़नेके लिये अवसर नहीं, तो वह कैसे कुछ बन सकते हैं?

डोरा बाजारकी सड़कके पिछवारे एक मुफ्त मिली हुई कोठरीमें रहती है। उसमें ही उसका पति और दो-एक और पुरुष रहते हैं, जो शायद उसके देवर हैं। सीजनमें उन्हें कहीं नौकरी कभी-कभी मिल जाती है। डोरा सबको खाना बनाकर खिला देती है। सब उसी कोठरीमें रहते हैं, कमसे कम सीजनके बाद। सीजनमें आधा-पेट खाना बच्चोंको मिल जाता है, लेकिन बाकी समय कैसे चलता है, इसे सोचना भी मुश्किल है। पासके कमरोंमें सैलानी लोग आकर रहते हैं, हर साल और हर सीजन नये चेहरे। यह डोराके

लिये भी अच्छा है, नहीं तो उन्हीं आदमियोंसे उधारके नामपर बार-बार माँगना बेकार होता। गरीबकी व्यथा गरीब ही जानते हैं। पासके पंजाबी परिवारका नौकर देखता था डोराकी दशाको। अपने मालिकोंके जूठे बचे हुये खानेमेंसे वह उसे कुछ दे देता। जलनेसे बचा पत्थरका कोयला भी डोराके लिये मिल जाता, और बँगलेके बाहर लगे हुये नलसे अपने टिनमें वह पानी भी भर लाती। पंजाबिन महिलाको रोज इस चीकट पहने स्त्रीको पानी भरकर ले जाते देखकर दया नहीं आई। उस दिन उसे उसने बुरी तौरसे फटकारा, जब कि डोराने आँखोंमें आँसू भरकर अपनी दीन-हीन अवस्थाको शब्दोंमें प्रकट करना चाहा। डोराके पिता-माता अच्छे रहे, जो इस जीवनको देखनेके लिये अब नहीं बच रहे हैं। डोरा भी कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करती है—मुझे भी माँ-बाप के पास भेज दो। लेकिन गरीबकी प्रार्थना इतनी आसानीसे थोड़े ही स्वीकार हो सकती है। उसकी काल-रात्रिका तो अभी मध्य भी नहीं मालूम होता।

★

सुलतान

कोई पुरी या विलासपुरी योंही नहीं सज जाती। उसके भोगके लिये जितनी व्यक्तियोंकी आवश्यकता होती है, सजानेके लिये उससे कई गुना अधिक हाथोंकी जरूरत पड़ती है। चीजोंको प्रस्तुत करनेके लिये रेस्तोराँ, होटल, बावर्ची, खानसामे, सागवाले, गोश्तवाले, मिठाईवाले चाहियें। मधुपुरीको सर्वकला-सम्पूर्ण बनानेके लिये जिन लोगोंकी आवश्यकता होती है, उनमें दर्जी और धूने (धुनियाँ) भी हैं। यहाँ आनेवाले विलासियोंके लिये हंसतूलके गद्दे ही नहीं, बल्कि रूई की भी कोमल तोशकोंकी आवश्यकता पड़ती है। फिर ठिकाना नहीं किस वक्त नीचेका माघ-पूस आ जाये, जिसे हटानेके लिये कई कम्बलोंसे अधिक सुखद रजाई होती है। तकियोंकी भी जरूरत पड़ती है। इस प्रकार मधुपुरीके अभिन्न अंगोंमें धूने (धुनिये) भी हैं। इसलिये यदि हरसाल बरसमें आठ महीने सुलतानको मधुपुरीमें देखा जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उसके हाथमें धुननेका धनुका और डम्बल जैसा लकड़ीका लोढ़ा देखकर पुरानी कहानी याद आ जाती है। कोई धूना अपने इसी प्रभावशाली वेषमें सवेरे ही सवेरे कामकी तालाशमें जा रहा था। रास्तेमें एक सियार मिल गया। सियारने सोचा, "यह तो अवश्य कोई शेरका शिकारी है, अब मेरी जानकी खैरियत नहीं। इस समय एक ही बचनेका उपाय है, कि मैं इसकी खुशामद करूँ" और उसने दरबारी कवियोंकी भाषामें कहा--

"कहाँ चले दिल्ली-सुलतान।
हाथे धनुहा तीर-कमान॥"

धूनेकी जानमें जान आई। वह समझ रहा था कि यह तो जंगलका राजा शेर है, और मुझे खाये विना नहीं रहेगा। प्रसन्न होकर उसने कहा—

'बड़ेकी बात बड़े पहचान।'

लेकिन, सुलतानको देखकर यह पुरानी कहावत याद आते ही एक टीस-सी लगती है।

सुलतान औसतसे अधिक नाटा, किन्तु कदमें बौना नहीं है। उसकी उमर अब ५० के करीब पहुँच रही है, पर देखनेमें उससे कहीं अधिक बूढ़ा मालूम होता है। वह दुबला-पतला केवल आयुके कारण नहीं है। शायद जवानीमें भी उसकी देहपर माँसकी मोटी तह कभी नहीं जमी। वचपनमें ही चेचकसे उसकी एक आँख जाती रही, इसलिये रीतिके अनुसार उसे नवाब कहलानेका भी अधिकार है; पर, सुलतानका दर्जा नवाबसे कहीं बढ़कर है। अल्ला और रसूलके माननेके कारण उसके चेहरेपर छोटी सी बकरदाढ़ी भी है। उसका धनुहा उसके कदसे ज्यादा बड़ा मालूम होता है, लकिन उसे ले चलनेमें उसको कोई परिश्रम नहीं पड़ता। मधुपुरीमें वह किस जगह रहता है, यह नहीं कहा जा सकता। शायद अपनी तरहके मजूरी करनेवाले धूनों या दूसरे लोगोंकी कोठरियोंमें किसीके साथ रहता होगा। लेकिन, कभी-कभी उसे सूर्योदय होते, केन्द्रसे दो-दो-तीन मील दूर की कोठियोंमें तीर-कमान लगाये देखा जाता है। दूरके और नजदीकके भी बँगलेवाले सुलतानको रोम-रोमसे आशीर्वाद देते हैं। यदि वह न आता, तो उसको ढूँढ़नेके लिये छ मील लम्बी बसी मधुपुरीमें कहाँ-कहाँ घूमना पड़ता। अथवा धुननेकी तोशक-रजाईको तीन मील दूरकी दूकानमें भेजना पड़ता, जो मजूरी भी ज्यादा लेती, तरद्दुद भी करना पड़ता और तिसपर भी इसमें सन्देह है कि रूई एक साल भी बराबर जमी रह सकती। सुलतान जिस रजाई या तोशकको भर देता है, मजाल क्या है, कि

वह कपड़ा फटनेसे पहिले खिसक जाये। एक तरहसे यह उसके घाटेका सौदा है,क्योंकि रूई जितनी ही जल्दी-जल्दी खिसकती रहे, उतना ही उसे ज्यादा काम मिलेगा,उसकी धुनाईकी दर ८ आना सेर है। लेकिन, इतना घाटा सहकर सुलतानन अपनी साख जमा दी है—जो एक वार उससे काम करा लेता है, उसकी नजरमें दूसरा धूना जँचता ही नहीं।

वह पासके किसी मैदानी जिलेका है। गाँव या शहरका यह नहीं कह सकते। कसाई, धूने या खानसामे गाँवके होनेपर भी अपनेको शहरका वतलाना अभिमानकी वात समझते हैं। एक कसाई—जो भी सिरपर छावड़ीमें माँस रक्खे मधुपुरीके कोने-कोनेमें घूमा करता है—केवल अपनेको शहरी ही नहीं वतलाता, वलिक एक दिन उसने न जाने किस प्रकरणमें यह भी जड़ दिया—हमारी औरतें सिनेमा देखन नहीं जाया करतीं। शहरमें रहते किसी कसाईकी भी स्त्री सिनेमा देखने नहीं जायेगी, यह विश्वास करनेकी वात नहीं है। दुनियाके किसी धर्मने सिनेमा वहिष्कारका फतवा नहीं दिया। वह यह भी कह रहा था कि हमारी स्त्रियाँ घरसे वाहर नहीं निकलतीं। इससे जरूर मालूम होता था, कि वह शहरका निवासी है। गाँवमें होनेपर ऐसा करना किसी मजदूर-पेशा मुसलमानके लिये भी वहुत कठिन है, चाहे वह कसाईका पेशा ही क्यों न करता हो? इस्लामने यदि धर्मके तौरपर और हिन्दू-धर्मने रवाजके तौरपर पर्देका जवर्दस्त प्रचार किया, तो भी उसका प्रभाव धनी लोगोंपर ही पड़ा, गरीवोंको अपनी मशक्कतकी कमाई खानी थी, वह ऐसी शौकीनीको अपनाकर कैसे घरके आधे हाथोंको लुंज कर देते? सुलतानको इस तरहका कोई अभिमान नहीं था। उसका चेहरा देखते ही आदमीके हृदयपर करुणा वरसने लगती है, और यदि काम न भी हो, तो कोई काम देनकी तवियत करती। पर, सुलतानने धुनना छोड़ और कोई काम नहीं सीखा। यदि वह गद्दीदार कुर्सियोंकी मरम्मत कर सकता,

वेंतसे उन्हें बुन सकता या रंग वार्निश लगा सकता, तो इसमें शक नहीं कि उसे और भी काम मिलते।

:o: :o: :o:

अगस्त १९४७ में जब भारतका विभाजन करके पाकिस्तान स्थापित हो गया, और उसके कारण कितनी ही जगहोंपर सीमान्तके दोनों तरफ निरीह नर-नारियोंकी निर्मम हत्या हुई, तो उससे मधुपुरी प्रभावित हुए विना नहीं रह सकी। विभाजनसे पहलेकी मधुपुरी विना भेदभावके सभी तरहके विलासियों-विलासिनियों तथा उनके लग्गू-भग्गुओंका स्वागत करनेके लिये तैयार रहती थी। वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें भारतीयोंके उच्च कुलोंमें चाहे जो भी छूआछूत रही हो, पर दो महायुद्धोंके बाद वह बिल्कुल मिट गई। वेटी न सही, लेकिन रोटी सबकी एक हो गई। मधुपुरी छोटी-बड़ी किसी सरकारकी ग्रीष्म-राजधानी नहीं थी, ऐसा होनेसे वह घाटेमें नहीं थी, क्योंकि सरकारी वातावरण न होनेसे यहाँ शुद्ध विलासी लोग आते थे, जिनमें गौरांगोंकी संख्या सबसे अधिक थी। उनके बाद राजा-नवाबोंका नम्बर आता था। क्लबोंमें, रेस्तोराँ और होटलोंमें उनके कीमती सुराके चषक एक दूसरेसे मिलकर खनखनाते थे। गौरांगोंके साथ कालोंको उतनी आजादी नहीं थी, और केवल किसी सरकारी मन्त्रीको ही इस तरहका कभी-कभी सौभाग्य प्राप्त हो सकता था। बावर्ची और खानसामे भारतवर्षमें सबसे अच्छे और और महँगे चट्टग्रामके वरुआ बौद्ध या गोआके ईसाई होते थे, लेकिन उनको रखनेकी शक्ति सभी गौरांगोंके पास नहीं थी। इस तरह इन पेशोंपर मुसलमानोंका आधिपत्य था। हिन्दू राजा हों, मुसलमान नवाब हों, या अंग्रेज सेठ या अफसर, सबके यहाँ मुसलमान बैरा खानसामा थे। हिन्दू, विशेषकर ऊपरकी जातवाले, इस पेशेमें ही नहीं लगा सकते थे। कोई रानी साहिबा यदि ज्यादा [illegible] विचार रखनेवाली हुईं, तो उनके यहाँ ब्राह्मण रसोइया भले हो,

जिसका काम साथ-साथ बँगलेके कमरों और फर्नीचरको गंदा करना भी होता था। मुसलमान वैरा चाहे साहेबके लिये उसे अभक्ष्य माँस भी तैयार करना हो, कोई आनाकानी नहीं करता था। हाँ, भोजनमें वह भागीदार नहीं बन सकता था। चार-चार पाँच-पाँच पीढ़ियोंसे यही काम करते-करते ये लोग रसोईखाने और मेजकी बारीकियोंको समझ गय थे। चीनी और शीशेके कीमती वर्तन उनके हाथोंमें बहुत कम टूटते थे। अपने मालिकके सामने खूब साफ-सुथरी बंगलेकीपर जैसी पोशाक पहनना उनके स्वभावमें हो गया था। अपने धर्मके प्रति उनमें बड़ी भक्ति थी। उनमेंसे अधिकांश रोज नमाज पढ़ते थे। जुमा (शुक्रवार) के दिन मधुपुरीकी अब खाली-सी पड़ी सारी मस्जिदें भर जाया करतीं। इतना होते भी उनमें दूसरे धर्मोंके प्रति उतनी घृणा नहीं थी, और न मुसलमान होनेके कारण वह अपनी अलग जबर्दस्त जमातबन्दी करनेके लिये तैयार थे। मधुपुरीके मकानों और सड़कोंके बनानेवाले मजदूर अधिकांश बालती (काश्मीरी) मुसलमान थे, जिन्हें यहाँके लोग लदाखी कहा करते थे। वह छूआछूतमें हिन्दुओंसे किसी प्रकार कम नहीं थे। अपने देशमें वह दूध तक भी हिन्दूके हाथका नहीं पी सकते। पर, थे बड़े सीधे-सादे, मधुपुरी के सबसे डरपोक बनिये भी उन्हें चार गाली दे सकते थे। यदि विभाजनसे २५ वर्ष पहले देखा जाता, तो मालूम होता, कि मधुपुरीमें साम्प्रदायिकता या मजहबी कटुताका कहीं नामोनिशान नहीं है।

मुस्लिमलीगने मुसलमानोंकी अलग जाति होनेका प्रचार करना शुरू किया, बढ़ते-बढ़ते उसने देशके बँटवारेकी माँग की। लीगी मध्य-वर्गके मुसलमान मधुपुरीमें आते ही थे, उनके सम्पर्क से मुसलमान व्यापारियों और फिर मुसलमान जनसाधारणपर प्रभाव पड़ने लगा। "मुस्लिमलीग जिन्दाबाद", "कायदे आजम जिन्दाबाद," "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे यहाँ भी जबतब सुनाई देने लगे।

द्वितीय महायुद्ध समाप्त होते-होते, पाकिस्तानका आन्दोलन बहुत जोर पकड़ने लगा, और बँटवारेसे एक ही साल पहले यहाँतक नौबत आ गयी, कि मधुपुरीके हिन्दुओंको पाकिस्तान बिल्कुल आँखोंके सामने दिखाई देने लगा। अब लदाखी मुसलमान भी मुस्लिमलीगके झण्डेके नीचे थे। मधुपुरीमें आनेवाले लोगोंमें शाकाहारी बहुत कम ही होते हैं। यहाँ माँसका जितना खर्च है, उसीके अनुसार माँस-विक्रेताओंकी जरूरत पड़ती है। सिक्ख हलाल होनेके कारण मुसलमानके हाथके माँसको भक्ष्य नहीं समझते, पर बाकी हिन्दू हों या ईसाई, सभी हलाल माँस खानेसे परहेज नही करते। इतने लोगोंके लिये माँस तैयार करनेके वास्ते यहाँ कसाइयोंकी बहुत काफी संख्या रहती थी। कसाई हिन्दुओंकी उन जातियोंमेंसे हैं, जो हिन्दुस्तानमें इस्लामके आते ही उसके झण्डेके नीचे चले गये। माँस और हड्डीवाले शरीरपर छुरा कैसे चलाना चाहिये, इसका उन्हें बचपनसे ही अभ्यास होता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि वह बड़े युद्धवीर होते हैं। पर हिन्दू उनकी खूनखारीसे डरते हैं। लीगका आन्दोलन चरमसीमापर पहुँचा था। पहले माँसको बहुत ढाँककर ले जाना पड़ता। जानवरको स्वास्थ्यके ख्यालसे भी हर जगह काटनेकी इजाजत नहीं थी। कसाइयोंने हिन्दुओंको धमकी दी, हम शहरके चौराहेपर गाय काटेंगे। हिन्दू कुछ करनेकी शक्ति नहीं रखते थे, अँग्रेज लीगियोंकी पीठ ठोंक रहे थे। कुछ दिन तो ऐसी नौबत आ गयी, कि सचमुच ही लाला लोग चौराहेके पासकी अपनी दूकानोंको छोड़कर भाग गये। चारों ओर महा आतंकका राज्य था। मुसलमान जनसाधारण यह ख्याल नहीं करता था, कि पाकिस्तान मधुपुरीसे बहुत दूर है। उसके बन जाने पर भी मधुपुरीके मुसलमानों-के लिये उससे कोई फायदा नहीं होगा, क्योंकि वह वहाँ जा नहीं सकते। मालूम नहीं, कभी पाकिस्तानके हिमायतियोंके सामने उन्होंने यह सवाल भी रक्खा। यदि रक्खा हो, तो उन्होंने बतला दिया

होगा, कि ऐसी नौबत आने पर हम सब पाकिस्तान चले चलेंगे। उनके कहनेके अनुसार पाकिस्तान पृथिवीपर दूसरा स्वर्ग होकर उतरनेवाला था।

अभी विभाजनकी सीमा निश्चित नहीं हुई थी, लेकिन पश्चिमी पंजावके सम्पन्न हिन्दू पहले हीसे निष्क्रमणकी तैयारी करने लगे। उनके लिये सवसे सस्ते और आरामके रहनेके स्थान हिमालयकी विलासपुरियाँ थीं, विशेषकर वह, जो पंजावसे बहुत दूर नहीं थीं। लाहौर और दूसरे शहरोंके हजारों परिवार भागकर उस साल (१९४७ ई०) की बरसातमें मधुपुरीमें चले आये। सारे मकान और औट-हौसतक ठसाठस भर गये। पंजावी हिन्दुओंको अपने प्रदेशमें मुसलमानोंके साथ संघर्ष करनेका तजर्वा था, इसीलिये वहांके वनिये भी उतने डरपोक नहीं थे, जितने कि मधुपुरीके। अपने संख्या-वलका भी उनको पूरा भरोसा था। कहाँ यहाँके लीगी मुसलमान चौरस्तेपर गाय काटनेकी धमकी देकर ढीली धोतीवाले लालोंकी नींद हराम किये हुए थे, और कहाँ पंजावियोंने आते ही लेनेका देना शुरू कर दिया। हफ्ते ही दो हफ्तेमें मुसलमान समझन लगे, जब दो-चार जगह पंजावी सिक्खों या हिन्दुओंने उन्हें पीट दिया और कहीं सुनवाई नहीं हुई। अव वह रोआँ गिराकर रहने लगे। "पाकिस्तान जिन्दावाद" की जगह "पाकिस्तान भागो" का नारा वुलन्द हुआ।

मध्यम-वर्गके लीगी मुसलमानोंकी भी हिम्मत टूट गयी, किन्तु उनको भरोसा था —हम पाकिस्तान पहुँच जायेंगे। मधुपुरीमें आये पंजावी हिन्दू-सिक्ख टकटकी लगाये देख रहे थे, कि लाहौर किधर जाता है—अधिकांश लोग लाहौर शहरके रहनेवाले थे। उन्हें हदसे ज्यादा उम्मीद थी, कि रावी पश्चिमी पाकिस्तानकी सीमा बनेगी, तथा लाहौर अवश्य हिन्दुस्तानमें चला आयेगा। आखिरी फैसला सुनानेसे पहिले ही पंजावमें खूनकी धारायें वहने

लगीं। रेडियोसे जब सुना कि लाहौर पाकिस्तानको दे दिया गया, तो शरणार्थियोंका खून खौल उठा। बेचारे मधुपुरीके अधिकांश मुसलमान अब समझने लगे थे, कि पाकिस्तान हो जाये, तो भी उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। हमें तो वहीं जीना और मरना है, जहाँ हमारी अनगिनत पीढ़ियाँ सोई पड़ी हैं। उनके मालिक अधिकांश जहाँ रहते हैं, वहीं उनकी जीविका चल सकती है। वह अपनी गलतीको पूरी तौरसे समझने लगे थे, लेकिन, इसे कौन सुनता है। यदि पाकिस्तानमें हमारे भाइयोंके खूनकी नदी बह रही है, तो यहाँ भी हमें उसका बदला लिये बिना नहीं रहना चाहिये। बिल्कुल कबीलेशाही युगकी मनोभावना लोगोंमें जाग उठी—अपराधी व्यक्ति नहीं, बल्कि उसका सारा कबीला है। मधुपुरीमें भी उसी काण्डको दोहरानेका उपक्रम हुआ। यहाँके अधिकारी बहुत चाहते थे, कि ऐसा न होने पाये। लेकिन, यह मामूली तेज हवा नहीं, बल्कि तूफान था, उसे कहाँ तक रोका जा सकता? आखिर यहाँ मुसलमानसे १५-२०—ज्यादातर मजदूरोंमें—बलिके बकरे बने। मधुपुरीके बिखरे हुए घरोंमें उन्हें रखना खतरेसे खाली नहीं था, इसलिये एकान्तमें स्थित एक बहुत-से बँगलोंवाली इस्टेटमें उन्हें निकाल-निकालकर पहुँचाया गया।

सुलतान कभी 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारेमें शामिल नहीं हुआ था। उसे समझमें ही नहीं आता था, कि पाकिस्तान यदि हमारे गाँवमें नहीं बनता, तो उससे हमें क्या हानि? वह बहुत बोलने-चालनेवाला आदमी नहीं था, नहीं तो लोग उसे काफिर कहनेसे भी बाज न आते। वह समझता था, मैं यदि किसीका बुरा नहीं करता तो मेरे साथ कोई क्यों बुरा करेगा?

लेकिन, जब उसके पड़ोसमें ही पाँच मुसलमान किरपानसे काट दिये गये, तो उसका विश्वास भी डगमगाने लगा, और पुलिसकी रक्षामें वह भी शरणार्थियोंके कैम्पमें पहुँचा। सरकारने खाने-

पीनेका प्रवन्ध किया था, लेकिन पहलेसे कोई तैयारी नहीं थी, इसलिये आध पेट भी भोजन नहीं मिलता था। इस उथल-पुथलसे मधुपुरीके चार-पाँच हिन्दू नेता और व्यापारी वन गये। मुसलमानोंकी चल-सम्पत्तिका अधिक भाग इनके हाथमें चला गया। रक्षाके लिये जो पुलिस और पलटन आई थी, वह भी पाकिस्तानमें हिन्दुओंके ऊपर होते अत्याचारोंकी अतिरंजित खवरोंको सुनकर मधुपुरीके निरीह मुसलमानोंके प्रति दया दिखानेके लिये तैयार नहीं थी। सैनिकोंके सामने दूकानोंसे कीमती कालीन, कपड़े, फर्नीचर और दूसरे सामान लूटे जाते, पर वह किसीको नहीं रोकते। धनी लोगोंने तो लाखसे १० लाखके मालिक वननेके लिये अपना वाकायदा प्रवन्ध कर लिया था, और थोड़ा-वहुत लूटनेवाले लोगोंकी चीज भी कुछ ही समय वाद मिट्टीके मोल इन्हींके हाथोंमें चली गई, क्योंकि उन्हें रखनेमें तलाशी और पकड़े जानेका भय था।

खैरियत यही हुई, कि मधुपुरीमें यह आँधी दो-तीन दिनसे अधिक नहीं रही। नाहककी खून-खरावीको लोगोंने छोड़ दिया, और पुलिस-पलटनने भी उसके रोकनेमें सफलता पाई। इस तूफानमें मधुपुरीने अपने इतिहासके सवसे योग्य और सर्वप्रिय प्रवन्धकको खो दिया। पागलपनमें सभी कैसे यह समझनेके लिये तैयार हो सकते थे, कि मुसलमान घरमें पैदा होनेपर भी उस पुरुषमें धार्मिक पक्षपात छू नहीं गया था। सुलतान अपने दूसरे धर्म-भाइयोंकी तरह यद्यपि इस्टेटके औट-होसमें रहनेके लिये मजवूर था, लेकिन सवसे पहले मना करनेपर भी जो आदमी वाहर निकला, वह सुलतान ही था। हाँ, एक दूसरे भी वृद्ध मुसलमान थे। अंग्रेजी सरकारके वहुत वड़े अफसर होकर पेन्शन ले मधुपुरीको ही उन्होंने अपना निवास स्थान वनाया था। वह उसकी विलासितासे नहीं, वल्कि सदा-वसन्तसे आकृष्ट हुये थे। उन्होंने समझा "मेरे हृदयके अन्तस्तलमें भी जव जरा भी मजहवी तअस्सुव नहीं है, तो मुझे क्यों किसीका डर होन

चाहिये ? और यदि डर हो भी, तो मरनेसे वढ़कर और क्या हो सकता है। ७० वर्षका होकर और प्राणोंका लोभ करना मेरे लिये अच्छा नहीं।" तूफान जब अपनी चरम शक्तिपर पहुँचा हुआ था, उस समय भी यह वृद्ध अकेले ही मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमते। उनके हित-मित्रोंने वहुत समझाया, लेकिन वह एक भी वात माननेके लिये तैयार नहीं थे। अन्तमें मधुपुरीके मुखियोंने चुपचाप उनके पीछे दो-तीन आदमी लगा दिये। यदि उन्हें यह मालूम होता, कि यह लोग रक्षाके लिये चल रहे हैं, तो वह कभी इसे नहीं पसन्द करते।

:o: :o: :o:

पाकिस्तान वन गया। तूफानके अगले ही साल मधुपुरीके वैरा-खानसामोंमेंसे कितने ही पाकिस्तान चले गये। मधुपुरीके वैरा-खानसामा हिमालयकी विलासपुरीके अभ्यासी थे, इसलिये पाकिस्तानमें भी उन्होंने वैसा ही स्थान ढूँढ़ना चाहा, लेकिन वहाँ एक मात्र 'मरी' ही थी। वहाँ जानेपर उनकी क्या हालत हुई, यह १ अगस्त १९५० अर्थात् तूफानके सालसे तीन वर्ष वादके एक पत्रसे मालूम होगा—

"वखीजमतसरीफ भाई सवीर वकस इस तरफ अपना भाईका सलाम और दुवा कवूल करना (।) वाकी अपनी भावीके तरफसे सलाम कवूल करना (।) कैती है के मेरा सलाम हात जोड़कर कवूल करना (।) वाकी भाई जी सव खैरीयेत है (।) आपकी खैरीयेत हमेसा खुदासे नेक चाता हूँ (।) खुस रहो सलामत रहो (।) वाकी आपका खत हमको तारीख ३१-७-५० को मीला (।) पड़कर दीलको भौत खुसी हुई (।) ख़ुदा आपको वी खुश रखें (।) इस तरे मालूम हुआ के मेरा भाई सवीर वकस मेरे पास वैठा है (।) वाकी अगर आपने वहीनके वासते इस तरे करा है जीसतरे आप लीखते हो के सव जैजाद वहीनके नामपर करा दीइ है तो भाई जी आपने भौत ही अच्छा कीया (।) मैं इस वातसे भौत खुसी हूँ (।)

ड़ा अच्छा आपने कीया (।) खुदा आपको नेकी देगा (।) बाकी जब आप पाँच दीनकी छुटीपर गये थे तो घर वी गये होंगे (।) बाकी भाईजी घरका खयाल सबसे पैले रखना (।) जो कुछ हो अपने छोटे भाईको वी सहारा देना (।) आपको मालूम हो के मैं कोसीस कर रहा हूँ (।) जीनदगी रहेगी तो इनसाअला मुलाकात जरूर होगी (।) आप कोई तराका खयाल ना करना (।) ये जुदाई कीसमतकी वात है (।) लेकीन खुदाये सुकरिया हो के हम आप तनदुरुस्त रहेंगे तो फीर वी मील जावेंगे (।) बाकी आपकी भावी तो रात दीन यही कैती है के चलो घर चलो (।) अगर हो तो मुझको सवीर वक्स के पास छोड़ आव (।) इस तरै कैती हैं (।) तो भाईजी कोई फीकर ना करना। मगर घरका खयाल रखना (।) अपनी इजत घरसे है (।) और सबको अपनेसे अच्छा समजो (।) बाकी गलती माफ हो तो जरा खत लीखनेवालेको मेरा भोत भोत सलाम पौंछे (।) और जरा अपनी हीनदीको साफ लीखें क्योंकि मेरी समजमें वड़ी मुसकीलसे आती है (।) बाकी भाईजी जब आपका काम वहाँपरसे खतम हो जायगा तो सीदा अपने घरको चलना (।) खबरदार इधर-उधरका खयाल ना करना (।) सवर और सूरसे सब कुछ होता है (।)

"फकत सबको मेरा सलाम कैना जो कोई आपके पास मिलने आता होगा। और मैंने येक खत देहली भी भेजा है (।) जवाब आनेपर वहाँका हाल लीखूँगा (।) जादा सलाम आपको (।)"

१९४७ के अगस्तमें मधुपुरीके मुसलमानोंपर जो आतंक छाया था, उसके कारण उनमेंसे कितने ही पाकिस्तान चले गये। उनका ख्याल था, कि वहाँपर भी वह नया घर आवाद कर लेंगे। जाड़ोंमें पहाड़ोंके नीचे किसी गाँवको अपना गाँव बना लेंगे, और गर्मियोंमें पाकिस्तानकी पर्वतीय विलासपुरी उनको काम देगी। पर, जितनी संख्यामें भारतमें विलासपुरियाँ थीं, और जितने सैलानी यहाँ आते

थे, उतने कोई-मरीमें नहीं आ सकते थे। इसके कारण उन्हें पछताने के लिये मजबूर होना पड़ा, जैसा कि ऊपरके पत्रसे मालूम होगा। जो पाकिस्तान नहीं जा सके, उन्होंने भी चार साल तक मधुपुरीकी तरफ झाँकनेकी हिम्मत नहीं की। वहाँ उन्हें अपने प्राणोंका डर मालूम हो रहा था। तीनों बाजारोंमें एक भी मुसलमानकी दूकान नहीं दिखाई पड़ती थी, और न सड़कोंपर वह चलते-फिरते मिलते थे। लेकिन, सुलतानका भय तो उसी साल हट चुका था। जब कैम्पसे मुसलमान स्त्री-पुरुषोंको लारियोंपर बैठाकर नीचे भेजा जा रहा था, तब भी उसने नीचे जाना पसन्द नहीं किया, और नवम्बर तक मधुपुरीमें ही अपने तीर-धनुषको लिये घूमता रहा। उस साल बरसातमें जो रंगमें भंग हुआ, उसके कारण दूसरा सीजन जम नहीं पाया। सैलानियोंकी कमी रही, लेकिन उनसे कई गुना अधिक शरणार्थी अब मधुपुरीमें आ गये थे। सुलतानको कामकी कमी नहीं रही, क्योंकि शरणार्थियोंको अभी अपने रहनेका कोई ठाँव-ठिकाना मालूम नहीं था, और उन्हें जाड़ोंको भी यहीं बिताना था, जिसके लिये रजाइयोंमें रूई भरवानेकी जरूरत थी।

:o: :o: :o:

तूफानने मधुपुरीकी लक्ष्मीको लूट लिया, यह बात नहीं मानी जा सकती। उसकी श्रीका ह्रास तो १९४६ में ही होने लगा, जब कि अग्रसोची अंग्रेज दूकानदार और दूसरे अपनी सम्पत्तिको मिट्टीके मोल बेचने लगे, और उस सालकी गर्मियोंमें अंग्रेज बहुत कम संख्यामें आये। यदि अगस्तका तूफान न आया होता, तो भी मधुपुरीके भाग्यमें वही बदा था, जिसे अब देखा जाता है। [illegible] पैसेवाले विलासियोंकी संख्या कम होने लगी। [illegible] अवकाश [illegible] गौरांग नर-नारी दालमें नमकके बराबर रह गये। हिन्दुस्तानी राजाओं और जमींदार—तालुकेदारोंकी आमदनीपर वज्रपात

गया। सरकारी उदारतासे जो पेन्शन या क्षतिपूर्तिकी रकम मिली, यद्यपि वह कम नहीं थी, लेकिन, ये सामन्त अपने भविष्यको अब निश्चिन्त नहीं समझते, इसलिये समझदार एक-एक पैसोंको सँभल-सँभलकर खर्च करते हैं। पहले जैसी साखर्ची उनमें देखी नहीं जाती। इसका प्रभाव मधुपुरीके सारे जीवनपर पड़ना स्वाभाविक है।

सुलतान हफ्ते भर भयका शिकार रहा और कैम्पकी नजरवन्दी तो उसने दो-तीन दिनसे अधिक नहीं स्वीकार की। उसके घरमें वुढ़िया छोड़ कोई नहीं है। उस तूफानमें उसका लड़का और वहू विखर गये। लाहौर में वह कहींपर रोटियाँ तोड़ रहे होंगे। लेकिन जिस तरहके जीवनको वेटा विता रहा है, वह नहीं चाहता, कि उसमें वापको भी वुलाकर शरीक करे। अगर वह लिखे तो भी सुलतान मधुपुरी छोड़कर जानेके लिये तैयार नहीं है। आँखकी ओटमें कितनोंको स्वर्ग दिखलाई पड़ता है, लेकिन सुलतान ऐसे स्वर्गका कभी विश्वासी नहीं हुआ। वह पहलेकी तरह तड़के अव दूरके वँगलोंमें नहीं पहुँचता, और ८ वजे रोटी खाकर ही अपनी कुटिया छोड़ता है। साथमें शायद ही कभी रुमालमें वँधी रोटी लाता है। महँगाई और उससे भी ज्यादा कुछ वर्षोंके चीनीके अकालने लोगोंकी उदारताको खतम कर दिया, और शायद ही कोई वावू सुलतानको एक प्याला चाय देनेकी इच्छा प्रकट करता है। सुलतानको अपनी मजूरीसे काम है। दो घण्टेमें पाँच सेर रूई धुन-भरकर रजाई वना देना उसके वायें हाथका खेल है, जिसका मतलव है ढाई रुपया मजूरी, यदि तागा भी चलाये, तो १२ आना और। लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं है, कि दिनके आठ घण्टेमें वह चौवीस रुपया कमा लेता है। दिनमें यदि एक भी काम मिल जाय, तो इसके लिये वह खुदासे वहुत-वहुत शुक्रिया अदा करता है।

सुलतानका चेहरा वड़ा भोला-भाला है। उसकी वात सीधी-

सादी होनेपर भी बड़ी प्रभावशाली होती है। उसे मधुर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके चेहरे और बात दोनोंमें एक तरहकी टीसका पता लगता है। सुलतान उसके बारेमें किसीसे कहना नहीं चाहता, शायद समझता है, कहनेसे मेरी तकलीफको कोई बाँट थोड़े ही लेगा। उसकी बुढ़िया गाँवमें रहती, बेटेके लिये हर वक्त रोती, खैर सल्लाह जाननेके लिये बराबर चिट्टी लिखवाती रहती है। लाहौर आजसे छ ही वर्ष पहले कितना नजदीक था, शामको चढ़े और सवेरे लाहौरमें मौजूद। बेटा-बहू लाहौरमें रहते हैं, लेकिन, वह बुढ़ियाके लिये दूसरा लोक है, जहाँ मरकर जानेकी भी उसे सम्भावना नहीं है। सुलतान छोटा-मोटा दार्शनिक है। अपने मनको वह किसी तरह समझा लेता है। अपने जाति-भाई कबीर साहबके कुछ शब्द भी जानता होता, तो इस समय उसे बहुत संतोष होता।

सुलतान मजहबकी तरफसे उदासीन है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह शुक्रवारको भी बराबर मजिस्दमें जानेवालोंमें नहीं था। रोजा रख लेता है, वह उसकी प्रकृतिके अनुकूल है। सभी गरीबोंके लिये सुलभ भी है, क्योंकि बिना सवाबकी उमीदके भी उनके घरमें रोजे बराबर ही हुआ करते हैं। उसका सबसे अधिक मेल-जोल अपने जैसे मजदूरोंके साथ है। धोबियोंके घरमें काम न होने पर वह घण्टों बैठा क्या-क्या बातें करता रहता है। सुलतानके चेहरेपर यदि कभी हँसी देखनी हो, तो ऐसे ही समय वह देखी जा सकती है। हजाम, माली, चौकीदार, जमादार ये सब उसके अपने वर्गके हैं, चाहे वह हिन्दू हों, मुसलमान हों या ईसाई; उनके बीचमें बैठकर वह बिल्कुल आत्मीयता अनुभव करता है। उसे काम दिलानेमें भी आखिर वही सहायता देते हैं, और वह भी उनके कामको कम मजूरीपर कर देता है। उसके रहनेका स्थान चाहे

तीन मील दूर हो, लेकिन वह सूर्यास्तके वाद ही लौटनका संकल्प करता है।

एक दिन सुलतानको देखा, वह रिक्शेमें नया हुआ है। धुन कारीगर होता है, और रिक्शा खींचनेवाला आदमी नर नहीं, पशुकी श्रेणीमें गिरा। सुलतानको रिक्शा खींचते देखकर बड़ा धक्का लगा। खींचनेवालेको नहीं, वल्कि देखनेवाले को। वह मान-अपमानसे परे है। दूसरा होता तो इस समय अपने मुँहको दूसरी ओर फेर लेता, लेकिन सुलतानने वावूको अपनी ओर गौरसे देखते देख जबर्दस्ती मुस्कुरानेकी कोशिश करते हुये कहा—"काम नहीं था। इस भाईने कहा, कि हमारा आदमी चला गया है, चले आओ।" यदि सुलतानको धुनाईका काम मिलता, तो वह रिक्शा खींचने क्यों जाता? उसके जाति-विरादरीवाले कभी इसे नहीं पसन्द करते? मधुपुरीमें एक भी मुसलमान रिक्शा खींचनेवाला नहीं मिल सकता, मैदानके शहरोंमें चाहे साइकल या हाथके रिक्शोंको कितने ही मुसलमान मजूर चलाते हों। क्या सुलतान अव इस अवस्थाको पहुँच गया? कारीगरीका काम छोड़ अव केवल देह-वलका सहारा ही पेट भरनेके लिये रह गया है। वह जवान भी नहीं है, और न वलवान् ही। निश्चय ही यदि किसी चढ़ाईपर रिक्शेको ले जाना हुआ, तो उसके लिये बड़ी मुश्किल हो जायेगी। मजूरोंको डाक्टरसे राय लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन सुलतान अगर नगरपालिकाके डाक्टरसे अपने दिलकी परीक्षा कराता, तो वह जरूर कहता, कि रिक्शा खींचना छोड़ दो, नहीं तो किसी वक्त भी मौत आकर तुम्हें दवोच लेगी। सुलतानने मौतसे कभी नहीं भय खाया। उसे जबतक जीना है, तबतक पेटका कोई इन्तजाम करना है। ऊपरसे नीचेकी श्रेणीमें जानेवाला सुलतान अकेला नहीं है। मधुपुरीमें विशेषकर और सारे देशमें भी इस विषयमें उसका अनुगमन करनेवाले लाखों हैं, और वह करोड़ों-पर पहुँचनेवाले हैं, यदि आर्थिक स्थिति ऐसी ही रही। उन पढ़े-

लिखे लोगोंसे सुलतान जैसे लोग हजार गुना बेहतर हैं, जिन्होंने अपने कामके लिये रेखा खींच ली है, और कलम चलानेके सिवाय दूसरे कामको न जानते हैं, न करना चाहते हैं। सुलतानके परिचितोंको उसके पतनपर हँसना नहीं चाहिये। उसने अपने तीर-धनुषको अपनी कोठरीमें रख रक्खा है, जहाँसे वह किसी भी समय उन्हें उठाकर फिर फेरी लगा सकता है।

मेम साहब

तीर्थोंकी कुछ-कुछ झलक हिमालय जैसे पर्वतों की आधुनिक विलास-पुरियोंमें भी देखनेमें आती है। तीर्थोंमें जैसे पण्डे प्रान्त-प्रान्तसे आये अपने यजमानोंका स्वागत करनेके लिये तैयार मिलते हैं, वैसे ही इन विलासपुरियोंमें मोटरके अड्डेपर ही होटलोंके पण्डे आ पहुँचते हैं और बोझा ढोनेवाले मजदूरोंकी छीना झपटी शुरू हो जाती है।

पिछली आधी शताब्दीमें भारतीय समाज कहाँसे कहाँ गया है, इसका भी यहाँ पता लगता है। इस शताब्दीके आरम्भमें हैट धारण करनेवाले काले या गोरे पुरुषको लोग साहब कहते थे, बाकी भद्र पुरुष बाबूजीके नामसे पुकारे जाते थे। अभी सेठ प्रधानतामें नहीं आये थे। लेकिन आज चाहे मधुपुरी जैसी आधुनिक विलासपुरीमें जाइये, या बदरीनाथ-केदारनाथ जैसे महातीर्थमें; आपको यह सुनकर आश्चर्य या खेद नहीं होना चाहिये, कि सभी आपको सेठ कह रहे हैं। कमसे कम उत्तरी भारतमें तो उस समय सेठ कहलानेके लिये खास तरहकी पगड़ीकी आवश्यकता थी, लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं। हैट लगानेवाले बाबू भी यहाँ सेठके नामसे ही पुकारे जाते हैं। नाम देनेवाले न कोई बड़े विद्वान् थे न अर्थशास्त्री। यह एक जनसाधारणका दिया हुआ नाम पहले ही से बहुत सोच-समझकर नहीं दिया गया है। शायद अनेक तीर चलाये गये: बाबू, पंडित, सेठ, लाला, मुंशी। एक तो अलग-अलग इतने नामोंको याद रखना मुश्किल और दूसरे ये शब्द सभीको पसन्द भी नहीं थे। सेठ शब्द कभी बहुत ऊँचा रहा होगा, लेकिन वह धीरे-धीरे कितनी ही जगहोंपर तराजू उठानेवाले बनियोंके लिये इस्तेमाल होने लगा—उत्तरमें

सेठ तो दक्षिणमें उसीका विगड़ा रूप चेट्टी । बीसवीं शताब्दी के मध्यमें सेठ शासक जातिके रूपमें परिणत हो गये—भारतमें कुछ देर हुई—तो फिर सम्मान प्रकट करनेके लिये इससे और अधिक उपयुक्त शब्द क्या हो सकता था ? राजा अब कितने रह ही गये हैं ? जन-गण अभी उतना नहीं समझता, किन्तु अब उनकी हस्ती ही क्या रह गई है । यदि पोशाकमें असाधारणता न हो, तो मधु-पुरीमें कोई उन्हें सेठ भी कह दे, तो बुरा माननेकी बात नहीं । आखिर कभी गाड़ी नावपर तो कभी नाव गाड़ीपरकी कहावत झूठी नहीं है । अब राजाका शासन सेठपर नहीं है, बल्कि सेठोंके कृपा-पात्र राजा हैं ।

कहानीकी चरित्रनायिका सेठ वर्गकी हैं, और उन्हें सेठानी कहना ही बिल्कुल ठीक होता, लेकिन उनके कानमें सेठानीके तीन अक्षर शूलकी तरह गड़े बिना नहीं रहते—खुशकिस्मतीसे ये पंक्तियाँ उनके सामनेसे नहीं गुजरेंगी । सेठानी पूरी मेम हैं, यदि कसर है, तो यही कि वह पोशाकमें मेम नहीं हैं; वह साड़ी ही पहनती हैं । भाषा उनकी अँग्रेजी है और उत्तर भारतके हिन्दी-प्रधान प्रदेशकी रहनेवाली होनेपर भी वह अंग्रेज मेमों जैसी हिन्दी और सो भी अपने नौकर-चाकरोंसे ही बोलती हैं । सौन्दर्यके लिए रंगका गोरा होना आवश्यक नहीं है । अगर ऐसा होता, तो यूरोपके सभी देश सुन्दरियों-की खान माने जाते । भारतमें जहाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें १५ से ३० फ़ी सैकड़ा सुन्दर स्त्रियाँ मिलती हैं, वहाँ यूरोपका शायद ही कोई देश हो, जहाँ यह संख्या १५ फ़ी सैकड़ा तक भी पहुँचती हो । पर, सेठानी गोरी हैं और सुन्दरी भी । पैंतीस वर्षपर पहुँचकर भी अभी उनका वसन्त आबाद है । बीस वर्षकी आयुमें यदि वह किसी देश या नगरकी सर्वसुन्दरी जन-पद-कल्याणी नहीं रही होंगी, तो अतिसुन्दरी तो जरूर ही रही होंगी । अफसोस, मधुपुरीमें उस समय सौन्दर्य-प्रतियोगितामें भारतीय ललनाओंके आगे [illegible]

अवसर नहीं था, नहीं तो किसी साल वह 'मिस मधुपुरी' जरूर बनी होतीं। वस्तुतः यह सौन्दर्यका सम्बल ही था, जिसके कारण उन्हें करोड़पति सेठकी बहू बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, नहीं तो उनके पिता-माताकी वह हैसियत कहाँ थी? दिन रात—सपनेमें भी—अंग्रेजी बोलनेवाली और अंग्रेजी ढंगसे रहनेवाली प्रौढ़ सुन्दरीको मेम साहब कहना ही अधिक उपयुक्त था, लेकिन कुलको या कमसे कम व्यवसायको देखना जरूरी है, जिसपर कि जीवन निर्भर करता है, इसलिये हम उन्हें सेठानी मेम कहकर कोई अन्याय नहीं करते। यह सुनकर किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिये, कि अंग्रेजोंके चले जानेपर, अंग्रेजी राजके उठ जानेपर भी अंग्रेजी भाषा मधुपुरीकी सड़कोंपर उसी तरह सर्वत्र सुनाई देती है, जिस तरह अंग्रेजोंके शासन करते समय। फरक यही है कि उस समय वह गोरे मुँहसे निकलती थी और अब रंगभेद दूर हो गया है। मेम साहब जब अपने पुत्रों और पुत्रियोंके साथ बँगलेमें या बाहर निकलती हैं, तो उनकी बात केवल अंग्रेजीमें ही होती है, सो भी आक्सफोर्डके उच्चारणके साथ। सेठने इंगलैण्डमें शिक्षा नहीं पायी। इंगलैण्डका मुँह भी पिताके मरनेके बाद देखा। पिताके सनातनी होनेके कारण और सेठोंमें रिवाज न होनेसे उन्हें किसी यूरोपियन या ऐंग्लो-इण्डियन स्कूलमें पढ़नेका मौका नहीं मिला। उन्हें मालूम हुआ कि अंग्रेजी भी सब एक ही तरहकी नहीं होती। बाबू इंगलिशकी तो बात ही छोड़िये, शुद्ध अंग्रेजीमें भी उसके अलग-अलग रूप हैं, और रूपके अनुसार ही आदमीकी संस्कृति और शिक्षाका मूल्यांकन होता है। जब उन्हें मालूम हुआ कि आक्सफोर्डका उच्चारण सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, तो उन्होंने उसीका ध्यानपूर्वक अनुकरण शुरू किया। जो अंग्रेजी—और सोनेके समय भी—सेठके विचारोंके प्रकट करनेका साधन है, आक्सफोर्ड एक्सेन्टके अनुसार होती है। मेम साहब भी इस बातमें पूर्ण पतिपरायणा हैं।

सेठ जब स्वयं आक्सफोर्डके परमभक्त हैं, तो वह अपनी पत्नीको उसके अनुरूप क्यों न बनाते ? लेकिन, पीली पगड़ी बांधनेवाले पिता-सेठ जबतक जीवित रहे, तबतक उनको इतनी हिम्मत नहीं हुई, कि पत्नीको सोलह आना मेम बना देते। दोनों यही मनाते थे कि कब बूढ़ोंके बन्धनसे मुक्ति मिलेगी। सोचते थे, चित्रगुप्त कहीं दो 'पेग' अधिक पीकर लुढ़क तो नहीं गया, जो सेठके लिये परवाना नहीं भेज रहा है। यदि परवाना उस समय आया, जब सेठानी चालीस पार कर गई, तो फिर उससे लाभ क्या होगा ? इसलिये जब सेठानीके पच्चीस वर्ष पहुँचनेतक बूढ़े सेठ मर गये, तो दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई—रँगीली दुनियाका मजा उड़ानेके लिये अभी उनके पास काफी समय था। अगले ही साल सेठ-सेठानी विलायत गये। महायुद्ध चल रहा था, खतरा था, लेकिन उनमें इतना धैर्य कहाँ कि युद्ध समाप्त होनेकी प्रतीक्षा करते। मेम साहब ने वहीं अपने लम्बे काले सुन्दर बालोंको कटाकर छोटा करा लिया। अब वह विशेष ढंगसे सँवारे जाते हैं, कुशल यूरोपियन हजामके हाथों उनमें स्थायी लहरें पड़ी रहती हैं और बाहरसे बेपरवाही किन्तु भीतरसे बहुत ध्यानसे सँवारे वह बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। बाल-कटी बहू जब यूरोप यात्रासे पहली बार लौटीं, तो सासको बहुत बुरा लगा, लेकिन वह जानती थी कि उनके पतिके साथ ही बहूके ऊपर अंकुश रखनेका जमाना गुजर गया। बूढ़ी सेठानी अब भी जिन्दा हैं, लेकिन दूधसे निकाली मक्खीकी तरह। वह पत्थरसे सिर टकराकर अपना माथा फोड़ चुकी हैं। तीसरी पीढ़ीकी बात तो अलग, दूसरी पीढ़ी ही उनकी कोई बात माननेके लिये तैयार नहीं है।

किसी फैशनको अन्धाधुन्ध स्वीकार करना खतरेकी बात है। यूरोपमें बहुत पहले फैशनकी दूकानें और बाजार खुल गये थे। वहाँ डाक्टरों की तरह फैशन-विशेषज्ञ एक-एक व्यि

उसके रूप-रंग, मोटापन, पतलापन आदिके अनुसार फैशनका नुस्खा लिखते थे। यह बहुत मँहगा नुस्खा था, इसमें शक नहीं, जससे आजकलका सिनेमाका नुस्खा कहीं सस्ता है: देशी-विदेशी सिन-तारिकाओंकी वेशभूषा, चलन-मटकनको देखो और आप भी उसका अनुकरण करने लगो। ऐसा अन्धानुकरण सौन्दर्य बढ़ानेका कारण न होकर कितनी ही वार उसको घटानेका काम देता है। लेकिन फैशनमें मस्त महिलाओंको इसकी क्या परवाह? हरएक महिला अपनेको स्वयं सौन्दर्यपारखी मानती है। आखिर लम्बे शीशेमें वह अपनेको पूरी तौरसे देखते हुए सजाती भी तो है, अगर कोई नुक्स हो तो क्या वह उसे नहीं समझ सकती? 'आप-रुचि भोजन पर-रुचि सिंगार' कहनेवालोंने झख मारा है। आज तो पर-रुचि भोजन हो सकता है, किन्तु सिंगार आप-रुचि ही होना चाहिये।

मेम साहबके लिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह फैशनमें सिने-तारिकाओंका अनुकरण करती हैं। पर वह तीन वार पेरिसके फैशन-विशेषज्ञोंकी सलाह ले चुकी हैं और उसका पालन भी करती हैं। फैशन तो एक वर्ष पूरा नहीं चलता, इसलिये दिन-दिनकी सलाह तो उन्हें सिने-तारिकायें ही दे सकती हैं। उनके घने काले कटे हुए लहरदार वाल भारतमें भी किसी विशेषज्ञके हाथों ही कटते-छँटते हैं।

मधुपुरी हिमालयकी विलासपुरियोंकी रानी है, इसलिये वहाँका खर्च भी अधिक होना स्वाभाविक है। लोग आम-तौरसे उसी समय यहाँ आते हैं, जब कि नीचे मैदानमें टेम्परेचर ११०° से ऊपर पहुँचने लगता है। लेकिन मेम साहव, जैसे ही तापमान शरीरके तापमानसे ऊपर होने लगता है, मैदानसे मधुपुरीकी ओर भागती हैं। कभी-कभी तो वह मार्चके अन्त हीमें आ पहुँचती हैं। लौटती उस वक्त हैं, जब तापमान नीचे उतरते-उतरते शरीरके तापमानके समीप

पहुँचने लगता है---अर्थात् वर्षके सात महीने उनके मधुपुरीमें बीतते हैं। उनकी दो लड़कियाँ और एक लड़का यहाँ यूरोपियन स्कूलमें पढ़ते हैं और चौथा पाँच वर्षका बच्चा मद्रासी आया की गोदमें खेलता है। आया काली-कलूटी भले ही हो, लेकिन वह अंग्रेजी बहुत शुद्ध बोलती है। हाँ, आक्सफोर्ड एक्सेन्टमें नहीं, उसकी शिक्षा छोटे सेठजादेको माँ-बाप द्वारा मिलती है।

इस प्रकार सेठ साहबको छोड़कर मेम साहबका सारा परिवार मधुपुरीमें ही रहता है। सेठ इन सात महीनोंमें दो-चार ही बार आते हैं और कभी एक हफ्तेसे अधिक नहीं रहते। उन्हें अपने व्यवसायकी बड़ी फिकर रहती है। चीनी मिल हो या कपड़ा मिल, अब दस-बीस सैकड़ा लाभके व्यवसाय तो नहीं रह गये हैं। कोई भी सेठ इसे पसन्द नहीं करता, फिर हमारा सेठ तो पिताके पुराने ढंगके व्यापारके साथ-साथ आधुनिक व्यापारमें भी अप-टु-डेट है। हर वक्त बाजार, व्यवसाय और सरकारी नीतिकी नब्ज देखनी पड़ती है। मैनेजरों और मुनीमोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। आमबाजारसे चोरबाजारमें नफा ज्यादा है, इसलिये अपने कारखानेकी कम-से-कम आधी उपज तो जरूर चोर-बाजारमें जानी चाहिये। फिर चोरबाजारी आमदनी-खर्चको पक्के बही-खातेमें डालकर अपना गला फँसाना सेठजी क्यों पसन्द करते? यद्यपि वह जानते हैं कि गला फँसनेका मतलब पचास-साठ लाखके मुनाफेमेंसे दो-चार लाख भेंट-पूजामें जानेके सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन इतना भी क्यों दिया जाय? इस तरहके मुँहजबानी तथा कच्ची-पक्की बहियोंके जंजालमें पड़े हिसाबमेंसे यदि मैनेजर और मुनीम आधा अपने लिये रख लें, तो सेठको कैसे पता चलेगा? इसलिये सेठ साहब हर बातको अपनी आँखोंके सामने करना चाहते हैं। सेठ उमरके साथ पैसा खर्च करनेमें कुछ संकोच भी करने लगे हैं, जो मेम साहबको पसन्द नहीं है।

मधुपुरीमें प्रथम श्रेणीकी कोठियाँ और बंगले बाजारसे मीलों दूर हैं। अंग्रेजोंको बाजारके पास रहना पसन्द नहीं था, इसलिये उन्होंने अपने बंगले दूर-दूर बनाये। अंग्रेजोंकी देखा-देखी राजा-महाराजा, तालुकदार-जमींदार भी मधुपुरीको पसन्द करने लगे, लेकिन उन्हें साहब लोगोंके बँगलोंवाले भागमें कोठी बनवानेका शायद ही कभी मौका मिलता था। अबतक अंग्रेजोंके चले जानेसे इन सुन्दर बंगलोंमेंसे कितने ही वर्षोंसे मनुष्योंके कण्ठ स्वरसे वंचित हैं, कितनों ही के फर्नीचर उठ गये हैं, फूलोंके गमले टूट गये हैं और मरम्मत न करनेसे छतोंको फोड़कर पानी भीतर चूने लगा है। हर साल उनकी लकड़ी या टीन उड़ती जा रही हैं। मजबूत दीवारें अभी रोके हुए हैं, नहीं तो वह कबके धाराशायी हो चुके होते। वे सिसक रहे हैं और कुछ ही वर्षोंके मेहमान हैं, यह उनके देखने हीसे मालूम होता है। अंग्रेजोंके क्षेत्रमें एक जमींदार—महाराजाको भी अपनी कोठी बनानेका अवसर मिल गया। उन्होंने पैसा खर्च करनेमें कोताही नहीं की। जब गेहूँ रुपयेका दस सेर था, उस समय उनकी जमींदारीकी आमदनी पच्चीस लाख सालाना थी, पर वह भी उनके लिए अपर्याप्त होती थी। फिर ऐसे शाहखर्च महाराजाके बारेमें क्या कहना? महाराजा दूसरे महायुद्धके शुरू होनेके कुछ ही समय बाद पस्त हो गये। पहिले भी वह गर्मियोंमें कभी-कभी ही मधुपुरी आते, इसकी जगह वह यूरोपकी सैर करना ज्यादा पसन्द करते थे। उन्होंने एक बार यूरोपीय महिलासे विवाह भी किया था, जो अनुकूल नहीं बैठा। महाराजाकी कोठी 'स्प्रिंग फील्ड' (वसन्त-क्षेत्र) सचमुच ही ऋतुराजके नामके अनुरूप थी। लड़ाई समाप्तिके पहिले ही इस कोठीको मेम साहबने किरायेपर ले लिया, और अब वह हर साल आकर उसीमें रहती हैं। महाराजा या उनके उत्तराधिकारियोंके लिए यह कोई टोटेका सौदा नहीं है। मधुपुरीमें पाँच हजारपर उठनेवाले बँगलेका अब दो हजार मिलना भी मुश्किल

हो गया है, लेकिन मेम साहब उसका किराया करीब-करीब उसी दरसे चुकाती हैं, जिसपर कि उन्होंने लड़ाईके समय उसे लिया था। मकान उनके लिये बहुत बड़ा है। आठ सूट कमरे हैं, डाइनिंग और ड्राइंग रूम नहीं, बल्कि हाल हैं। महाराजाके लिए यह अपर्याप्त थे, क्योंकि उनके परिवार और मेहमानोंकी संख्या अधिक थी। मेम साहब उतने मेहमानोंको रखनेकी हिम्मत नहीं कर सकतीं, तो भी वह मेहमाननवाज हैं और अकेले खान-पान उन्हें पसन्द नहीं है। लेकिन केवल कमरोंको भरनेके लिए तो वह मेहमानोंको नहीं रख सकतीं। फलतः कुछ कमरे यों ही पड़े रहते हैं। उन्हें सफाई पसन्द है, इसलिये सफाई सबकी हो जाती है। आयाके अतिरिक्त उनके निजी पाँच नौकर हैं, मोटर-टायरवाला अपना निजी रिक्शा है, जिसके लिये छ रिक्शेवाले सात महीनेके लिये रख लिये जाते हैं। मधुपुरीमें जब देशी राजाओं और बड़े-बड़े तालुकदारोंका मजमा रहा करता था, उस समय भड़कीली वर्दी पहननेवाले रिक्शा-कुलियों-की काफी संख्या रहा करती थी, अब तो शायद तीन ही चार वैसे रिक्शा मिलेंगे। मेम साहबके रिक्शावालोंकी वर्दियोंपर नम्बर भी लगे हुए हैं। अफसोस है कि अब उन्हें अपना रिक्शा-गौरव दिखलानेका उतना मौका नहीं रह गया।

:o: :o: :o:

मेम साहब पिछले साल यूरोप गयी थीं। पेरिससे और चीजोंके साथ वह सेंटकी कुछ सुन्दर और कीमती शीशियाँ ले आई थीं। उस दिन प्यारेलाल सन्सकी दूकानमें गयीं, तो उन्हें अपने सेंटके करीब-करीब खतम हो जानेका ख्याल आया और उन्होंने पेरिसके उस सेन्टकी माँग की।

प्यारेलालने कहा—मेम साहब, यह सेन्ट तो पेरिस हीमें मिल सकता है। अंग्रेजोंके समय हम मँगा लिया करते थे, लेकिन अब

सरकारने रुकावट डाल दी है और खर्च करनेवाले ग्राहक भी नहीं हैं ।

"तो क्या यह सेन्ट मिल ही नहीं सकता ?" मेम साहब ने कुछ निराश स्वरमें कहा—"हमारा तो इसके विना काम नहीं चल सकता। हमें मालूम होता, तो लगाने और बाँटनेमें इतनी शाहखर्ची न की होती ।"

"मिल नहीं सकता, यह बात नहीं है । क्या चीज है जो नहीं मिल सकती ? लेकिन, दामका और समयका सवाल अलग है ।"

"तो मिल सकता है !" प्रसन्नता प्रकट करते हुए मेम साहबने कानोंपर कुछ आगे बढ़ आये केशोंको चमकते लाल रंगसे रँगी हुई लम्बे नाखूनवाली कोमल अँगुलियोंसे पीछेकी ओर हटाकर कहा—"आप मँगा दें । जरा जल्दी । दामकी कोई परवाह न करें ।"

प्यारेलाल सन्सका कारवार पुराना है । सभी जगहोंसे उनके सम्बन्ध हैं । उसी दिन उन्होंने बम्बई टेलीफोन किया । मालूम हुआ, गोआसे सेन्ट मँगाया जा सकता है । फ्रांसीसी और पोर्तुगीजी बस्तियाँ जबतक भारतमें मौजूद हैं, तबतक किसी मालकी रोक-थामका भारतीय कानून ताकपर रखा जा सकता है । बम्बईसे आदमी गोआ दौड़ा और सेन्ट लेकर सीधा मधुपुरी पहुँच गया । हफ्ताभर बाद पेरिसके सबसे मँहगे सेन्टकी दो शीशियाँ प्यारेलाल सन्सकी दूकानमें मौजूद थीं । मेम साहब प्रायः रोज ही टेलीफोनसे पूछा करतीं, जब उन्हें खबर दी गयी, कि शीशियाँ आ गयी हैं, तो एक मिनटकी देर किये बिना वर्दीधारी रिक्शावालोंने उन्हें प्यारेलाल सन्सकी दूकानपर पहुँचा दिया । बूढ़े लालाने अपने हाथसे शीशियोंके केसको उनके सामने रक्खा । जिस केसमें वह रक्खी थीं, वह स्वयं एक कीमती कलाकी चीज मालूम होता था । मेम साहबने शीशीको देखा । ठीक वही सेन्ट था, उसी तरहके कट-ग्लासकी नफीस शीशियाँ थीं । दाम पूछा, तो प्यारेलाल ने एक-

एकका ढाई सौ बतलाया। मेम साहबने 'कोई पर्वाह नहीं' कहकर अपने रिक्शेवालोंके हाथमें शीशियोंके केस दे दिये।

कोठी लौटते समय उनके मनमें बड़ा उत्साह और आनन्द था। पेरिसके सेन्टके सामने भला दूसरे देशी और विलायती सेन्ट क्या कीमत रख सकते थे ?

सेन्टके बारे ही में वह इतनी शाहखर्च नहीं थीं, हर एक चीजमें उनका हाथ उसी तरह खुला हुआ था। प्यारेलाल सन्स और दूसरे एक दर्जन व्यापारियोंके लिए कल्पवृक्ष यही लोग तो थे। मेम साहब जब दूकानपर पहुँचती, तो मँहगीसे मँहगी चीज और बड़े परिमाणमें लेतीं। उनके ससुर चुपचाप कभी-कभी शराब पी लिया करते थे। वह नहीं चाहते थे कि बच्चोंमें वैसी बुरी आदत पड़े। लेकिन उनकी बिरादरीके लोग पिछड़े प्रदेशोंमें ही नहीं बसते थे। पंजाबमें भी वह थे, जो कि आधुनिकता और फैशनके सम्बन्धमें सारे हिन्दुस्तानका कान काटता है। मेम साहब वहाँ की थीं, इसलिये वह खान-पानमें इतना आगे थीं, जिसका उनकी सात पीढ़ी भी स्वप्न नहीं देख सकती थी। मांस और शराबके बिना तो एक वक्त भी उनका गुजारा नहीं चल सकता था। आधुनिकता उन्हें सिगरेटकी तरफ भी खींच ले गयी थी। 'पाँच सौ पचपन' सिगरेट उनको प्रिय था और जब कभी जातीं तो दो दर्जन टिन रिक्शेपर रखवा लातीं। उनकी अपनी श्रेणीकी महिलाएँ अक्सर उनके पास आया करतीं, जिनका भी स्वागत-सत्कार करना होता था। और शराब ? शेरी, व्हिस्की, शैम्पेन, शारतू, पोर्त और ब्रांडी की सबसे अच्छी बोतलें वह पसन्द करती थीं। लेते वक्त बोतलें नहीं, बल्कि दो-दो तीन-तीन केस लेतीं। हरेक केसमें एक दर्जन बोतलें होतीं। व्हिस्की उन्हें बहुत प्रिय थी, जो अट्ठाइस रुपये बोतल भी मिल सकती थी, लेकिन वह सबसे कीमती छप्पन रुपये बोतलवाली व्हिस्की पसन्द करतीं। एक बारकी खरीदमें वह

उसके दो केस लेतीं। शैम्पेन वह पैंतीस रुपये बोतलवाली पसन्द करतीं, फिर जायका बदलनेके लिये ब्रांडीका नम्बर आता जो तीस रुपये बोतल थी। शारतू छब्बीस रुपये बोतलकी भी खप जाती, लेकिन बारह रुपये बोतलवाली शेरी, और आधुनिक मदिरायें तो उनकी 'पेन्ट्री' में सिर्फ किसिमको बढ़ानेके लिए ही पहुँचती थीं। 'स्प्रिंग फील्ड' में सचमुच शराबकी नहरें बहा करतीं। लेकिन यह कहना होगा कि मेम साहब पानमें भी बहुत संयमका परिचय देतीं। मधुपुरीमें उनके वर्गकी दूसरी महिलायें कितनी ही ऐसी भी थीं, जिनको रातको सोकर उठनेके समय ही प्रकृतिस्थ देखा जा सकता था, नहीं तो वह 'छोटी-हाजिरी' से ही पान शुरू कर देतीं और हरवक्त धुत्त बनी रहतीं। मेम साहब सूर्यास्तके बाद ही शीशेमें हाथ लगातीं, सिवाय उन विशेष दिनोंके, जब कि पाँच बजेकी चायमें किसी विशेष महिलाके आतिथ्यके कारण उन्हें पान-गोष्ठीमें शामिल होना पड़ता। पीनेके बाद भी उन्हें बकवास करनेकी आदत नहीं थी। आँखोंमें सुरूर चढ़ जाता, रूज लगे गाल कुछ और लाल हो जाते, तथा हर वक्त फिर-फिर लिप्स्टिक फिरते ओठ कुछ ज्यादा चलने लगते। इसके सिवा उनपर और कोई असर नहीं होता था।

:o: :o: :o:

उस दिन मेम साहब प्यारेलाल सन्स के यहाँ पहुँचीं। उनका छोटा बच्चा भी साथ था। लड़केने तीनपहिया साइकिल, खिलौने जैसी चीजें तीन सौ रुपयेकी चुनीं। मेम साहबको भी लड़केके लिए नौसैनिक एडमिरलकी वर्दी पसन्द आई। एक बारमें हजार रुपयेकी चीजें ले लेना-उनके लिए बिल्कुल मामूली बात थी। बूढ़े प्यारेलाल खुर्राट व्यापारी थे। देख रहे थे, मेम साहबपर सात हजार उधार हो गया है। पहले उधारका कोई रास्ता निकाले

विना वह आगे देना पसन्द नहीं कर सकते थे । जिस वक्त चीजोंको उनके नौकर सँभालनेमें लगे हुए थे, उसी वक्त उन्होंने कोमल किन्तु साथ ही दृढ़ शव्दोंमें कहा—

"मेम साहव, आदमी आपके पास भेजा था, रुपया नहीं मिला । आपने देनेके लिए कहा था ।'

'ओ, आई एम सारी !' मेम साहवने तुरन्त नाटकीय ढंगसे जवाव दे दरवाजेकी ओर वढ़ते हुए कहा—मैं चेकवुक लाना भूल गई ।

अपनी सखी-सहेलियोंसे मेम साहवने चेक लाना भूलना ही नहीं, वल्कि दूसरे भी वहुतसे हथकंडे सीखे थे । मधुपुरीमें कोई जौहरी, जेनरल स्टोर, फोटोग्राफीकी दूकान नहीं थी, जिसका दो-चार हजार उधार 'स्प्रिग फील्ड' वाली मेम साहवके ऊपर न हो । हर साल आने पर वह हर एकके पास चार-पाँच सौ भेज देतीं और आगेके भरोसेपर उनके पास माल आता रहता । सालमें दस हजारका माल लेकर मुश्किलसे वह चार पाँच हजार दे पातीं । अव उनके ऊपर वीस हजार उधार था । सेठ इसे आसानीसे वेवाक कर सकते थे । मेम साहवको वुरा लगता था, कि अव वह हाथको उतना खुला रखने के लिए तैयार नहीं थे । पिछले तीन-चार वर्षोंसे अव सेठको वह उतना अनुरक्त नहीं पा रही थीं । यदि उनकी जातिमें तलाकका रिवाज होता, या व्याह सिविल-मैरिजसे हुआ होता, तो क्या जाने सेठने पत्नीसे सम्वन्ध कवका तोड़ लिया होता । शायद तव भी यह सम्भव नहीं होता, क्योंकि अपने चारों वच्चोंके साथ सेठका असाधारण प्रेम था । कुछ दिनोंसे दोनोंका सम्वन्ध वहुत शिथिल हो चुका था । मेम साहव कभी-कभी उसास लेकर कहतीं—जव मेरे मुँहपर वसन्त था तो यह भँवरेकी तरह हर वक्त उड़ा करता था, और अव...।

पति संकोच दिखलाते हुए अव भी अपनी पत्नीके लिए सात

महीनोंमें ३०–४० हजार खर्च करता । चार हजार महीना कम नहीं है—यह सोचकर सेठ साहव अपने व्यवहारको बिलकुल उचित समझते, लेकिन मेम साहवका हाथ कैसे मानता । उन्हें तो ऐसे जीवनकी आदत लग गई थी, जिसमें पैसेका कोई मूल्य नहीं, आवश्यक या अनावश्यक चीजोंकी मात्राका भी कोई सवाल नहीं । जो भी चीज लेतीं, मँहगीसे-मँहगी और दर्जनसे कम नहीं । चाकलेटका उतना खर्च नहीं था, आखिर स्कूलके तीनों वच्चे रोज माँके पास नहीं आते, वस छोटा लड़का और मेहमान । लेकिन तव भी एक वार वह छ दर्जन अर्थात् नव्वे रुपयेसे कमका चाकलेट लिये विना नहीं नहीं रहतीं ।

वनिये व्यापारी कहा करते हैं, उधार तो व्यापारकी शोभा है । मेम साहव उनकी उसी वातपर ही चल रही थीं । उनके पति भी अपने मिलों और कारखानों के लिए लाखों रुपये वैंकों और महाजनोंसे उधार लेते और उधार देते भी थे । फिर मेम साहव क्या वुरा कर रही थीं ? प्यारेलाल जैसे लोग भी तो आँख मूँद कर अपने ग्राहकों-को लूट रहे थे । उन्हें भी पचास सैकड़ा नफा लिये बिना संतोष नहीं होता था । जव वह इतनोंको लूट रहे थे, तो पचास ग्राहकोंमें एकाध मेम साहव जैसे मिल जायें, तो इसमें नाक-भौं सिकोड़नेकी क्या आवश्यकता ? फिर वह विलकुल निराश भी नहीं हो सकते थे, क्योंकि सेठके अव भी पौ-वारह थे । तो भी कितने ही अव जरूर देख रहे थे, कि मेम साहव से पैसा लौटनेवाला नहीं । मुकदमा चलानेमें और खर्च वढ़नेका डर था और कुछ चीजें ऐसी थीं, जिनके दामको ठीक तौरसे वहीपर चढ़ाया नहीं जा सकता था ।

मेम साहबकी चोटसे प्यारेलाल जैसे धनी सेठ ही घायल नहीं थे, उनकी चोटसे बेचारे कितने ही मर भी रहे थे । आखिर हर चीज के लिए लिखा-पढ़ी नहीं की जा सकती । दुनिया चाहे कितनी ही

बेईमान हो, तब भी बहुत-सी चीजें विश्वासपर दी जाती हैं। बनारसवाली कीमती साड़ियाँ मेम साहबको बहुत पसन्द थीं। देखनेके लिये चार मँगवा लीं, पीछे पानेसे इन्कार कर दिया, तो कौनसी अदालत उनसे पैसा दिलवा सकती थी? सबसे अफसोसकी बात तो यह थी कि वह गरीबका भी पैसा मारनेमें आनाकानी नहीं करतीं। एक बार एक फेरीवाला आदमीके सिरपर पुस्तकोंका ढेर लिवाये आया। मेम साहबने सौ रुपयेसे ऊपरकी पुस्तकें रखवा लीं, और कह दिया दामके लिए दो हफ्ते बाद आना। इसी बीच वह सीजन खतमकर मधुपुरी छोड़ गयीं। बेचारा फेरीवाला मारा गया, वह किसी दूकानसे कमीशनपर किताबें ले घूम-घूमकर बेच रहा था। यदि उसे अगले साल अपने इस कामको जारी रखना था, तो किताबोंका दाम चुकाना आवश्यक था। मेम साहबके मधुपुरी छोड़ते समय बड़े दूकानदारोंके ही नहीं, बल्कि साग-फलवाले, रोटी-मक्खनवाले, दूध देनेवाले और धोबीके भी बहुतसे पैसे बाकी रह गये। वह अगले वर्षकी आशापर ही संतोष करनेके लिए मजबूर हुए।

लिपस्टिक

"कुब्जाकी वहूको भी देखा तुमने ?"—सुस्ताने के लिए वैठ गई दो वुढ़ियोंमेंसे एकने कहा । मधुपुरी दूरतक फैला हुआ शहर है, जिसमें वाजारको छोड़कर घर कम तथा जंगल और पहाड़ ज्यादा है । जव लोगोंको अपने वँगलों पर पहुँचनेके लिए दो-दो मीलकी मंजिल मारनी हो, तो सुस्तानेके लिए कहीं-कहीं पर कुर्सियों और वेंचोंका होना जरूरी है । ऐसी जगहोंपर कहीं-कहीं ऊपर टिन या सीमेन्टकी छतें हैं । धूपसे वचनेके लिये भी वहाँ आदमी वैठ सकते हैं, यद्यपि मधुपुरीकी धूप अत्यन्त कोमलांगिनियोंको ही परेशान करती है । वर्षामें जरूर इसका उपयोग सभी कर सकते हैं, लेकिन मधुपुरीकी म्युनिसिपैलिटी सीमेन्टके वने हुए वेंचोंको हटानेमें असमर्थ है, नहीं तो कितनी ही टिनकी छतरियोंके नीचेकी काठकी वेंचें गायव हैं । शायद अव उनकी आवश्यकता नहीं समझी जाती । प्रश्न होता है, टिनकी छतरीको भी वहाँ किस मर्जके लिए रखा गया ? हाँ, एक तुक इसकी हो सकती है । वाहरसे आनेवाले सैलानी और शौकीन कुर्सी और वेंचपर वैठनेके आदी हैं, लेकिन नगरमें वरावर रहनेवाले, विशेष कर स्त्रियाँ जमीनपर ही निस्संकोच भावसे वैठ सकती हैं, जैसे कि यह दोनों वुढ़िया इस वक्त वर्षाकी फुहारोंसे वचनेके लिए वैठ गई थीं । शायद इन्हीं वेचारियोंका खयाल करके म्युनिसिपैलिटीके धनी-धोरियोंने एकाव जगहसे वेंचोंको हटवा दिया ।

—देखा क्यों नहीं, रामूकी माँ, सारा टोला-मोहल्ला जानता है ।

—मालम नहीं, क्या होनेवाला है ?—शामूकी माँ ने मुँह विचकाकर कहा—पैरमें महावर लगाते देखा था। हमारे देशमें सास और दादी-सासके जमानेमें तो माथेमें सिन्दूर भी नहीं लगाते थे, खाली एक विन्दी भर होती थी।

—हाँ, विन्दी भी तो हम लोगोंके वहू होकर आनेके समय निकली। लेकिन, सिन्दूर चाहे माथेमें लगाया जाय या वालोंके भीतर कोई वात नहीं, वह तो सोहागकी निशानी है। लेकिन यह ओठोंमें महावर या सिन्दूर लगाना तो हमने कभी नहीं सुना।

—सुना नहीं था, क्यों ? यहाँ मधुपुरीमें पहले मेमोंको ही ओठ लाल करते देखते थे। पूछने पर हमारी पड़ोसकी कोठीवाली जमादारिनने कहा था, कि यह भी सोहागकी निशानी है, हम लोगोंके यहाँ माथे और माँगमें सिन्दूर लगाते हैं, और साहेव लोगोंके यहाँ ओठमें।

—हाँ, मेमोंकी वात दूसरी है, उनको धर्म-अधर्मका कोई ख्याल थोड़े ही है, चाहे जो करें।

—मेमोंकी देखा-देखी क्रिस्तानियोंने ओठमें महावर लगाना शुरू किया। हम समझते थे, कि चलो हमारा उनका न दीन एक, न धर्म एक, चाहे जो करें। लेकिन, यह किसको पता था, कि नाते-गोतेमें भी कुब्जाकी वहू पैदा हो जायेगी।

—हाँ, शामूकी माँ ! यह वीमारी मेमों और क्रिस्तानियोंसे वड़े वावू लोगोंके यहाँ फैली। साड़ी पहनें, काजल लगायें कोई वात नहीं, लेकिन ओठ लाल करनेसे क्या फायदा ?

रामू और शामूके घरमें अभी ओठमें "महावर" लगानेका रिवाज नहीं हुआ था। लेकिन उनके घरोंमें भी जवान वहुयें थीं, जिनका कुब्जाकी वहूके साथ वहुत उठना-वैठना था। कुब्जाकी वहू थोड़ी पढ़ी-लिखी थी। उसका रंग साँवला नहीं, वल्कि वहुत कुछ काला था और चेहरा तो मालूम होता है जैसे हाथीका मुँह गोरी-

पुत्रके कन्धेपर शंकरजीकी तरह लगा दिया हो—ब्रह्माने अपनी भूल समझ वहाँ किसी लड़केका चेहरा रख दिया। काले और मरदाने चेहरेपर रामू-शामूकी माँके अनुसार "महावर" (लिप्स्टिक) की क्या शोभा है, यह कहना मुश्किल है? मूलतः ओठ लाल करना अस्वाभाविकता दिखानेके लिए नहीं था। अत्यन्त गोरे, खाते-पीते कोमल चेहरेके ओठ स्वभावतः ही लाल रहते हैं। यदि शोख चमकते खूनके रंगवाले पके विम्वाके फलसे ओठोंकी उपमा हमारे पुराने कवि देते हैं, तो उसका मतलब यही है, कि कोमलांगिनियोंके चरम-सौन्दर्यको बढ़ानेके लिए ओठ स्वयं लाल हो जाते थे। उस समय विम्वाधर दुर्लभ होनेसे दूसरी तरुणियाँ भी अधर राग इस्तेमाल करती थीं, लेकिन अधर-रागसे रँगे हुए ओठको कवि विम्वाधर नहीं कहते थे, वह तो स्वाभाविक अधरके लिए ही ऐसी उपमा देते थे। शरीरके स्वाभाविक रंगमें मिलानेके लिए कृत्रिम रंग लगानेकी कोशिश सभी देशोंमें की जाती है। हमारे देशमें वाल प्रायः सभीके काले होते हैं, इसलिए वुढ़ापेके कारण जब वह सफेद होने लगते हैं, तो उन्हें काले खिजाबसे रंग दिया जाता है। ईरान और अफगानिस्तानमें पहले अधिक और अब भी वहुतसे लोगोंके वाल भूरे या मेंहदी रंगके होते हैं, इसीलिए वहाँ असली रंगमें मिलानेके लिए लोग मेंहदीवाले रंगके खिजाबसे अपने दाढ़ी और वालोंको रँगते थे, जिसकी वेकारकी नकल कभी-कभी हमारे यहाँ भी की जाती है। रामू और शामूकी माँ इस वहसमें नहीं पड़ रही थीं, कि काले चेहरेके ओठोंपर लाल "महावर" लगानी चाहिये या काली। उनको तो इसी वातपर आपत्ति थी, कि यह नई वात क्यों की जा रही है?

लेकिन नई वात दुनियामें होती ही रहती है। उन्होंने स्वयं अपनी जवानीमें पहले-पहल माँगमें सिन्दूर डाले, जिसका पश्चिमी जिलोंमें उस समय चलन नहीं था। उनको यह भी पता नहीं था,

कि एक समय उनकी तीस ही चालीस पीढ़ी पहलेकी सासें अपनी जवानीमें अधर-राग नामका ओठोंको रंगनेवाला रंग इस्तेमाल करती थीं, जिसके लिए यह नहीं कहा जा सकता, कि वह रंग चेहरेके रंगके अनुसार भिन्न-भिन्न होता था। बहुत सम्भव है, वह लाल ही रंगका था, क्योंकि उस समयकी सभी सुन्दरियाँ बिम्बाधरोष्ठी बननेके लिए लालायित थीं। कुञ्जाकी बहूका कसूर इतना ही था, कि रामू और शामूके मोहल्लेमें वह पहली बनियाइन बहू थी, जिसने अपने ओठ लाल किये थे, जिसके ऊपर टोले-मोहल्लेमें बड़ी-बूढ़ियाँ खूब टिप्पणी किया करती थीं। टोला-मोहल्ला भी कहना गलत है, क्योंकि मधुपुरीके मीलभरमें बने वीस बँगलोंमें कहीं-कहीं एकाध दूकानें है। रामू-शामूकी दूकान जहाँपर थी, वहाँ छ-सात और भी दूकानदार रहते थे। इन छ–सात परिवारोंके अतिरिक्त वहाँके बँगलोंमें बस एक-एक चौकीदार साल भर रहनेवाले थे, बाकी सैलानी नर-नारी महीने-दो महीनेके मेहमान होते : सैलानी महिलायें गरीब घरकी नहीं थीं। गरीब भला गर्मीसे बचनेके लिए मधुपुरी जैसी खर्चीली जगहमें कैसे आ सकते थे ? बँगलेवाली महिलाओंमेंसे केवल बूढ़ियाँ ही थीं, जो ओठ नहीं रँगती थीं। इसलिए इस मोहल्लेकी भद्र महिलाओंका जहाँतक सम्बन्ध था, उनके लिए लिप्स्टिक या अधर-राग बिल्कुल मामूली सी बात थी।

—कलयुग है कलयुग, शामू की माँ! जो न हो जाय ?

—हाँ, ठीक कहती हो। कुञ्जाकी माँ भी क्या करे। एक-दो बार टोका, लेकिन आजकल तो घरपर आते ही बहुयें राजपाट ले लेती हैं, सासोंको अब कौन पूछता है ? कुञ्जाका बाप जिन्दा होता, तो सासका कुछ मान भी रहता। अब तो बहू-बेटे एक ओर और सास दूसरी ओर, बेचारी क्या करे ?

—देखते जाओ, दुनियामें अब उल्टी रीति चल रही है !

"

—इससे उल्टी रीति और क्या होगी कि एड़ीका महावर ओठमें लगने लगा।

:o: :o: :o:

कुब्जाकी वहू इस टोलेके सात वनियाँ-परिवारोंमें पहली थीं, जिसने लिप्स्टिक लगानी शुरू की। रामू और शामूकी माँने चार साल पहले जव छतरीके नीचे वैठकर उसकी समालोचना की थी, उस समय उनको यही मालूम था, कि यह पराये घरकी वैसन्तर है, अपने घरमें आग वनकर नहीं आयेगी। उनको क्या मालूम था कि यह आग पराये घरमें ही आकर नहीं रुक जायेगी। आज सभी घरोंकी वहुयें अपनी आँखोंके सामने शिक्षिता सैलानी महिलाओंको ओठ लाल किये हुए देख रही थीं। उनमेंसे किसी-किसीका सम्पर्क पासके वँगले में ठहरे किसी सैलानी-परिवारके साथ हुआ था। आखिर वहाँपर ठहरनेवाली भी तो वनिये-वाभनकी थीं, साहेव और मेम थोड़ी ही थीं, कि उनसे वह डरतीं। वह अपनी आँखों देखतीं कि सोकर उठनेके समय जिनका मुँह विल्कुल फीका-फीकासा लगता, वह भी जव आध घण्टे हीके लिए दर्पणके सामने वैठ जातीं, भौहोंपर काली पेन्सिल फेरतीं, आँखोंमें काजल, गालोंपर पौडर और ओठोंपर लिप्स्टिक लगा लेतीं, तो अप्सराओंको मात करने लगतीं। अपनी आँखों के सामने इस चमत्कारको वह चुपचाप कैसे देख सकती थीं? मधुपुरीमें भला कौन-सी स्त्री होगी, जो सालमें पाँच-सात वार सिनेमा न जाती हो। रामू-शामू की माँने भी तुलसी-दास, सीतावनवास और दूसरे देवी-देवताओंके फिल्म देखे ही नहीं थे, वल्कि जव राम-लक्ष्मण-सीता सिनेमाके श्वेतपटपर चलते-फिरते दिखाई पड़े, तो उन्होंने पीछेवालोंकी झिड़की खाकरके भी खड़ा होकर दसों नखोंसे हाथ जोड़ा था, और 'सिनेमा खराव है', यह कभी नहीं कहा था। फिर उनकी वहुयें यदि जनप्रिय फिल्मोंको देखने के लिए अपने पतियोंके साथ अधिक जाया करें, तो इसमें उन्हें

आपत्ति क्या हो सकती है? सिनेमासे उनका बहुत मनोरंजन होता, साथ ही बहुत सारी सीख भी मिलती—प्रेमका बीज कैसे खेतमें फेंका जाता है, कैसे वह अंकुरित होता है और क्या-क्या यत्न करनेसे फूलता-फलता है। पतियोंको मुट्ठीमें करनेके लिए बड़ी बूढ़ियाँ अपने समयमें वशीकरण मन्त्र ढूँढ़ा करती थीं। कुब्जा या रामूकी बहुओंका वशीकरण मन्त्रपर कोई विश्वास नहीं, यह बात तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उससे कहीं अधिक विश्वास उन बातों-पर था जो सिनेमामें प्रयोग करके दिखलाई जाती थीं। जीवनके हर क्षेत्रमें सिनेमा आजकल पथ-प्रदर्शक है। इसीने पश्चिमी जिलोंसे लहँगेको निकाल बाहर किया। ब्याह-शादीके वक्त अब भी तिलकमें लहँगा-चुनरी आती है, लेकिन वह केवल बक्समें बन्द करके रखनेके लिए ही। नई-नवेली बहुओंकी तो बात ही छोड़िए, रामू-शामूकी माँको भी अगर लहँगा पहननेके लिए कहा जाय, तो हर्गिज तैयार न होंगी। सिनेमाने कैसा कपड़ा पहनना चाहिए, कैसा जेवर पहनना चाहिए, कैसे बात करनी चाहिए, कैसे गाना गाना चाहिए आदि-आदि सैकड़ों बातें सिखलाईं। सिनेमा अक्सर रंगीन नहीं होते, लेकिन तारिकाओंके ओठोंके काले रंगसे भी पता लगते देर नहीं लगती, कि उन्होंने भी लिप्स्टिकसे ओठोंको रंग रखा है। कुब्जाके मोहल्लेकी तरुणियोंको अब यह मालूम होने लगा था, कि केवल वेसलीका फूहड़ औरतें ही आजकलके शृंगारसे इन्कार करती हैं। फिर बहुओंकी ही तो बात नहीं थी। जो पति उन्हें सिनेमा दिखलानेके लिए ले जाते, वह भी तो चाहते थे, कि उनकी बहुयें सिनेमाकी तारिकाकी शक्लमें दीखें। जब मधुपुरीमें गर्मियोंमें कोई प्रसिद्ध तारिका आ जाती, तो साधारण समयसे सात-आठ गुनी आबादी हो जानेवाली मधुपुरी उसे देखनेके लिए उमड़ पड़ती, बड़ी-बड़ी भद्र तरुणियाँ धक्का खा करके भी एक नजर तारिकाको देखकर अपनेको कृतकृत्य करनेकी कोशिश

वहू जैसी महिलाएँ वहाँतक नहीं पहुँच सकती थीं, लेकिन खबर तो उनके कानोंतक भी पहुँचती थी—कभी उनके पति ही बतलाते, कभी कोई देवर ही कह जाता। तारिकाओं और साधारण भद्र-महिलाओंमें फर्क करना या पहचानना उनके लिए सम्भव नहीं था, नहीं तो जिस सड़कके ऊपर उनकी दूकान थी, उसपरसे कितनी ही वार तारिकाएँ भी रिक्शापर या पैदल गुजरती थीं। तारिकाओंका अनुकरण करना उनके लिए हर हालतमें आवश्यक था? यही नहीं कि उसके द्वारा हर स्त्रीके हृदयमें सुन्दरी दिखाई देनेकी लालसा पूरी होती थी, वल्कि वैसा न करनेपर पतियोंके भी हाथसे वेहाथ होनेका डर था। मोहल्लेका एक वनिया तरुण अपनी स्त्रीके फूहड़पनके कारण ही दूसरीके साथ भाग गया। उसकी स्त्री वदसूरत नहीं थी, वल्कि कुब्जाकी वहूके कथानुसार "सौ में से एक थी, लेकिन अपनी सुघराईकी कदर करना नहीं जानती थी।" कुंजाकी वहूने इतना जोर-शोरका प्रचार किया, कि लिप्स्टिक महामारीकी तरह इन घरोंमें फैल गई। पड़ोसकी देवरानीसे उसने सीखकर ओठ रँगना शुरू किया। जेठानीने पहले वहुत नाक-भौं सिकोड़ा, लेकिन जव देवरानीको सजकर मनमोहनीके रूपमें देखा, और अपने पतिको खिचा-खिचा, तो उसे भी देवरानीका अनुसरण करना पड़ा। अव वह भी ओठोंको लाल करती है। कुब्जाकी वहूको घरका सारा काम अपने हाथों करना पड़ता था। चूल्हा-चौका, वर्तन-वासन, कूटना-पीसना वह स्वयं करती है। वच्चोंका भी देखना सुनना उसे ही करना होता। फिर कपड़े क्यों न मैले रहें? कपड़े भले ही चीकट हो गये हों, चाहे जमीनपर ही वैठना पड़ता हो, लेकिन जवसे कुब्जाकी वहू मुकलावा (गौना) के वाद सासरे आई, तवसे कभी उसके विना रँगे ओठोंको किसीने नहीं देखा। दुनिया नई चीजके लिए चार दिन हँसती है। आदमीको दृढ़ रहना चाहिए, फिर वह उसका लोहा मानती, और अन्तमें उसका अनुसरण करने लगती है। यही वात कुब्जाकी वहूके वारे में भी हुई।

यह कहना मुश्किल है, कि नई चीजके स्वागतमें पुरुष जल्दी आगे आते हैं या स्त्री। कुछ चीजें हैं, जिनमें शायद स्त्रियाँ आगे रहती हैं। उसका कारण भी है। स्त्रियाँ भली प्रकार जानती हैं, कि उनके जीवनका सारा सुख और सफलता अपने पतियोंको खुश रखनेमें है। वशीकरण मन्त्रकी खोजमें वह पीढ़ियोंसे चली आई हैं, इसलिए जो भी उस तरहकी चीज सामने आती है, उसे अपनानेमें वह सबसे पहले रहती हैं। पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अपनी सुन्दरताकी कम परवाह करते हैं, यह बात नहीं है, लेकिन यह जरूर है, कि वह कृत्रिम सुन्दरताके लिए उतने पागल नहीं बनते। आखिर स्त्रीकी तरह उन्हें किसीकी कृपापर जीना नहीं है, वह अपनी रोजी आप कमाते हैं। इसके अपवाद भी देखे गये हैं। मधुपुरीमें ओठोंपर हलका लाल रंग लगानेवाले तरुण भी कभी-कभी देखे गये हैं।

:o: :o: :o:

—व्हाट नॉन्सेन्स ! इन फूहड़ोंको यह भी पता नहीं है, कि वही चीज किसी जगह काजल हो जाती है, और किसी जगह कालिख।

—तुम्हें यह सिखलाना चाहिए, शैला ! —शैलाको हैण्ड-बेगसे छोटा शीशा निकालकर ओठोंपर लिप्स्टिक फेरते हुए देखकर विमलाने कहा।

—हाँ, यह बनियाइनें तो लिप्स्टिकको भी टके सेर बना देना चाहती हैं !

—यदि किसी भली चीजको अधिक लोग भोग सकें, तो इसमें ईर्ष्या करनेकी बात क्या है ?—विमलाने गम्भीर स्वरमें कहा।

—हूँ, तुम्हें क्या, तुम तो वियोगिनी सीताका अभिनय करती हो, न लिप्स्टिक लगाती न काजल-टीका।

विमला शैलासे कहीं अधिक सुन्दर तरुणी थी। शैलाने मनमार-कर किसी तरह मैट्रिक पास किया था, लेकिन विमला एम०ए० थी।

धनी बापकी बेटी होते हुए भी स्वावलंबी बननेके ख्यालसे वह एक महिला कालेज में अंग्रेजीकी प्रोफेसरी करती थी। दोनों बाल-सहेलियाँ थीं, और इस साल मधुपुरीमें एक ही बँगलेमें रहनेका अवसर पाकर दोनों ही बहुत प्रसन्न थीं। शैलाको एक करोड़पति सेठकी बीबी बननेका अभिमान अपनी सहेलीके सामने नहीं था, और विमला भी अपने बचपनके स्नेहको उसी तरह शैलाके प्रति कायम रखे हुए थी। विमलापर आधुनिकताका कोई प्रभाव न पड़ा हो, यह तो नहीं कहा जा सकता। विचारोंमें वह अत्यन्त आधुनिक थी, लेकिन रँग-चँग कर सौन्दर्य बढ़ानेकी न उसे इच्छा थी और न आवश्यकता। वह उससे कुढ़ती भी नहीं थी, क्योंकि जानती थी कि आजकी स्त्री भी उसी तरह रूपाजीवा है, जिस तरह पचासों पीढ़ियोंसे स्त्रियाँ रहती आई हैं। सुन्दर रूप है, तो कमाकर खिलाने-पहनानेवाला पति उसपर रीझता है, उससे उसकी आजीविका अच्छी और निश्चित हो जाती है। इसलिए जबतक स्त्री पुरुषकी कमाई खानेवाली है, तबतक उसे अपने रूपकी परवाह रखनी ही होगी। उसकी सहेली शैला सजधज कर यदि प्रथम श्रेणीकी तारिका जैसी नहीं दिखलाई देगी, तो करोड़पति सेठ उसपर अपनेको न्यौछावर करनेके लिए तैयार नहीं रहेंगे, बल्कि वह किसी दूसरी तारिकाके पीछे दौड़ते फिरेंगे। शैला अपने प्रेमकी गारंटी इसी बातमें समझती है, कि वह खूब सुन्दरी दीख पड़े। लेकिन, उसे वह बर्दाश्त नहीं था, कि कुब्जाकी बहू जैसी मैली-कुचैली साड़ी पहननेवाली काली स्त्रियाँ लिप्स्टिक जैसे अमोघ अस्त्रको भद्दे तौरसे इस्तेमाल करें।

—हर कामका सलीका होता है। सलीका ही तो बतलाता है, कि आदमी चतुर है या गँवार।

—सलीका भी एक तरहका नहीं होता शैला! तुम जितनी मूल्यवान् लिप्स्टिक लगा रही हो, क्या दूसरी शिक्षिता, संस्कृता

तरुणियां भी वैसी लिप्स्टिक इस्तेमाल कर सकती हैं? वह दस-बीस नहीं खर्च कर सकतीं, इसलिए दो-डेढ़की इस्तेमाल करती हैं।

—यह बुरा है, विमला बहन। डाक्टर बतला चुके हैं, कि खराब लिप्स्टिक इस्तेमाल करनेसे ओठोंमें घाव हो जानेका डर है।

—डाक्टर मँहगी लिप्स्टिक बनानेवालोंके दलाल भी हो सकते हैं। वह चाहते हैं, कि लोग मँहगीको खरीदें, सस्तीको न लें। लेकिन सबके पति करोड़पति तो नहीं हैं; और आज लिप्स्टिक सबके लिए अत्यावश्यक चीज बन गई है, इसलिए तुम ही बताओ, वह क्या करें?

—तुम तो मालूम होता है, लिप्स्टिककी बड़ी पक्षपातिनी हो गई!

—पक्षपातिनीका सवाल नहीं। मैं इसे इन्कार नहीं करती कि जबतक स्त्री अपने पैरोंपर खड़ी नहीं होती, तबतक वह रूपाजीवा रहेगी, चाहे वह कोठेपर बैठे या महलके भीतर। सारी दुनियामें और देशकालानुसार कुछ देरसे हर समय स्त्रीमें जो स्वाभाविक प्रवृत्ति देखी गई है, उसके लिए मैं स्त्रियोंको दोषी क्यों ठहराऊँ?

—तुमने तो शैला बहन! शायद इसीलिए स्वावलम्बी बनना स्वीकार किया।

—हाँ, मैं मानती हूँ: "तुलसी करपर कर धरो, कर-तर कर न धरो।" किसीके हाथके नीचे हाथ रखनेपर कोई अपने स्वाभिमानकी रक्षा कैसे कर सकता है? मैं कहती हूँ, कि सभी महिलायें कर-पर कर न धरनेवाली हो जायें, लेकिन साथ ही यह भी जानती हूँ, कि यह काम जितना कहनेमें आसान है उतना करनेमें नहीं।

—अर्थात् उसके लिए तुम सामाजिक क्रान्ति चाहती हो?

—सामाजिक क्रान्तिसे डरो मत शैला, वह केवल तुम्हारे सेठजीके लिए और तुम्हारे लिए नहीं आयेगी, वह बाढ़की तरह आयेगी, जिसमें सभी डूब जायेंगे और जिससे पार हो सभी सुखी और समृद्ध जीवन बितायेंगे!

—तुम्हारे क्रान्तिके वादके संसारमें क्या करूँगी ?

—जो यह वनियेकी वहू कर रही है, जिसका लिप्स्टिक लगाना तुम देख नहीं सकतीं।

—देख नहीं सकती, यह कहना तो विमला वहन, ठीक नहीं है। मैं इतना ही चाहती हूँ, कि सारी दुनियाकी तरुणियाँ लिप्स्टिक लगावें, लेकिन तरीकेके साथ।

—लेकिन जानती हो शैला, तरीका यह तीन अक्षर कितना महँगा है ? कहाँसे ये वेचारी तीस रुपयेकी जार्जेटकी साड़ी लायें ? उन्हें भी मैला-कुचैला न होनेके लिए कमसे कम चार साड़ियाँ तो पास होनी चाहियें, और तिसपर भी वह घरके सारे काम-काजमें लगी अपनी साड़ीको दो दिन भी साफ न रख सकेंगी। साफ रखनेके लिए अधिक पैसों ही की जरूरत नहीं है, वल्कि कामसे हाथोंको खींच लेना भी जरूरी है। तव क्या यह परिवार जीवित भी रह सकेगा ?

—तो किसने कहा कि लिप्स्टिक लगाओ ?—शैलाने झुँझलाकर कहा।

—जिसने तुम्हें लगानेके लिए कहा ? सुन्दर वननेकी सबको इच्छा है—विमलाने मुस्कुराकर शैलाको जवाव दिया।

शैला इस विषयपर कितनी ही वार विमलासे वात कर चुकी थी।

—हमें किसी चीजको करनेके लिए आगे रखना नहीं चाहिए, जवतक यह न समझ लें, कि वह दूसरेकी शक्तिके भीतर है। अगर कोई चीज लाभकी समझी जाती है, तो एकको देखकर दूसरा भी उसे स्वीकार करता है; लेकिन, उसे ऐसा वनाकर, जिसमें उसके लिए वह साध्य हो सके।

—लेकिन तुम्हारी क्रान्तिके सफल होनेपर तो सव धान बाईस पसेरी हो जायगा, फिर सभी स्त्रियाँ लिप्स्टिक लगाने लगेंगी, और शायद पेरिसकी वनी हुई इस लिप्स्टिक जैसी।

—मैं लिप्स्टिकपर लेक्चर देने नहीं आई हूँ। हमारी क्रान्तिके सफल होनेपर स्त्री जाति स्वतन्त्र होगी, हर तरहसे, आर्थिक तौरसे भी। उसे लिप्स्टिककी जरूरत होगी या नहीं, यह मैं नहीं जानती। अधिकसे अधिक यही कह सकती हूँ कि इतनी मात्रामें आवश्यकता नहीं होगी, उसकी इतनी परवाह नहीं की जायेगी और वह कुछ भद्र महिलाओंके लिए ही सुरक्षित नहीं मानी जायेगी।

—तो फिर वही बात हुई न—सब धान बाईस पसेरी। मुझे ताज्जुब होता है, जब हमारी सब बातोंकी नकल करनी ही है, तो बाल भी क्यों नहीं छोटा करवा लेतीं।

—छोटे करवानेके लिए पैसा हाथमें आने दीजिए, फिर शैला, तुम उसे भी देख लोगी। तुम्हारी एक बारकी बाल कटाईमें ६० रु० लगते हैं, और फिर उसको कितना यत्न करके तुम्हें रखना पड़ता है। ये बेचारी उसके लिए कहाँसे पैसा लायेंगी?

—तब तो हमें यह सब छोड़ना होगा।

—छोड़ना चाहो भी शैला, तो छोड़ नहीं सकती! एक शैलाके छोड़नेसे ही क्या हो सकता है? क्या मधुपुरीमें शामके वक्त एकसे एक बन-ठनकर चलनेवाली सुन्दरियाँ ऐसा करके अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मार सकती हैं? तुम जानती हो, यदि बनाव-शृंगार छोड़ भी दो, तो तुम कुरूप नहीं रहोगी, तुम्हारा शृंगार वास्तविकता-से १९-२० का ही अन्तर कर देता है, लेकिन हमारे भद्र वर्गकी महिलाएँ जो रँग-चँग कर शामके वक्त निकलती हैं, क्या उनमेंसे अधिकांश वैसा करनेपर कौड़ीकी तीन नहीं हो जायेंगी? इसीलिए न मैं इनको बनाव शृंगार छोड़नेके लिए कहती, न उनके लिए घृणा प्रकट करती।

—यह दुनिया है, अब यही वेदान्त तुम्हें बघारना रह गया है न?

—वेदान्त वघारना नहीं है, वेदान्तका काम है लोगोंको दुनियासे भगाना । लेकिन, उसे रहने दो । नई बातोंका सभी समाजमें पहले ही स्वागत नहीं हो जाता । शिक्षित वर्ग नवीनताको जल्दी स्वीकार करनेके लिए तैयार होता है, क्योंकि वह देश और काल दोनोंमें कितने ही परिवर्त्तनोंको अपनी आँखोंके सामने देखता है । लेकिन, तो भी क्या घरपर रहनेपर तुम इसी तरह स्वच्छन्द रह सकती हो, जैसा कि यहाँ मधुपुरी में ।

—नहीं, शैला बहन, मैं तो मनाती हूँ वह दँतटुट्टी बुढ़िया क्यों गोड़ तोड़ कर बैठी हुई हैं । यद्यपि उसके बड़बड़ानेसे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता, सेठजी हमेशा मेरा पक्ष लेनेके लिए तैयार हैं, लेकिन तब भी संकोच तो होता है ।

—और यहाँ चाहो तो एक सलाईकी जगह पावभर काजल लगाओ, माशेकी जगह पाँच तोला लिप्स्टिकसे ओठ रँगो चाहे जो करो, यहाँ तुम्हारी दुनिया है, सासकी दुनियाके लिए यहाँ स्थान नहीं है ।

—तुम बहुत बढ़ा-चढ़ाके कहती हो । कौन इतना काजल और लिप्स्टिक लगाता है ?

—मात्रासे अधिक लगानेवाली बहुत-सी को रोज ही तुम देखती हो । मैं तो हैरान होती हूँ, कि हमारी बहनें पश्चिमी महिलाओंके सभी प्रसाधनोंको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं, लेकिन साथ ही अपनी बड़ी-बूढ़ियोंकी बातोंको छोड़ना नहीं चाहतीं । आखिर कौन पश्चिमी महिला है, जो काजल लगाती है ।

—उनको इसका महातम नहीं मालूम है, विमला बहन । आँखोंके दोनों कोरोंपर, कानकी ओर जरा काली रेखा खींच देनेपर आँखें दूनी नहीं तो ड्योढ़ी जरूर बढ़ जाती हैं ।

—हर देशको सौन्दर्य-विशेषज्ञ पैदा करनेका अधिकार है, मैं यह मानती हूँ । लेकिन मुझे तो यह सब कुछ खेल-सा मालूम

होता है । चाहे यह वनियेकी वहू हो या शैला रानी, सभी अपने-आपको लेकर गुड़ियाका खेल रच रही हैं, अभिनय कर रही हैं ।

—कहा है, 'दुनिया एक तमाशा है,' फिर गुड़ियोंका खेल रचाया जाये, तो क्या वुरा ?

—मैं वुरा नहीं कहती, इससे कितनोंका मनोरंजन हो सकता है । लेकिन, मैं इतना अवश्य कहूँगी कि मधुपुरीमें आजकल सीजनके समय वरावर रहनेवाले लोग दालमें नमकके वरावर और वाकी सभी हमारे-तुम्हारे जैसे सैलानी और शौकीन हैं । कुछ महीनोंके लिये यहाँ एक विल्कुल नई दुनिया आकर वस जाती है । दिल्ली, कलकत्ता या वम्वईमें हमारा वर्ग १० सैकड़ा भी नहीं है, और यहाँ हमारे वर्गसे भिन्नता रखनेवाले १० सैकड़ेसे कम हैं, इसीलिए वहाँ हमारी सभी वातोंका अनुकरण करनेके लिए लोग उसी तरह तैयार नहीं हैं, जैसा कि हमारी पड़ोसिन ये तरुण वहनें हैं ।

सचमुच ही मधुपुरी जैसी हिमालयकी विलासपुरियोंमें फैशनका प्रचार जितनी जल्दी और व्यापक रूपसे होता है, वैसा मैदानी शहरोंमें नहीं होता । इसका एक वड़ा कारण यही है, कि सीजनमें आये सुन्दरियोंके सैलावमें यहाँकी साधारण तरुणियोंके पैर उखड़ जाते हैं और वे भी प्रवाहके अनुसार वहने लगती हैं ।

☆

७

पाखाना

किसी आधुनिक या पुरानी पुरीमें सबसे गन्दा काम करनेवाले नर-नारियोंकी भी आवश्यकता होती है। टट्टी-पेशाब माँ भी अपने बच्चोंकी उठाती है, लेकिन उसके कारण वह अछूत नहीं हो जाती। हर देशमें नगर होते हैं, जहाँ हज ारों-लाखों परिवार इकट्ठा रहते हैं। सफाई-पसन्द देशोंके लोग अपने गाँवोंमें भी स्वच्छताका बहुत ख्याल रखते हैं, लेकिन भारतके लोग—जो कि शुद्धाशुद्धका ख्याल ..रनेमें अपनेको दुनियामें बेमिसाल समझते हैं—अपने गाँवोंको जितने गन्दे रखते हैं, उतने दुनियाके पिछड़ेसे पिछड़े देश और लोग भी नहीं रखते। भारतीयोंकी एक अच्छी परिभाषा हो सकती है—जो वैयक्तिक शुद्धताका बहुत ख्याल रक्खें, लेकिन सामाजिक स्वास्थ्य और शुद्धताके नियमोंकी पूरी तौरसे अवहेलना करें। यहाँ गाँवके पासकी खुली जगह पेशाब-पाखानेके लिए सुरक्षित समझी जाती है। क़स्बों और शहरोंमें ऐसा करके महामारीको आवाहन करना होता, इसलिये वहाँ बहुत पहले हीसे टट्टी या संडासका प्रबन्ध था। दो हजार वर्ष पहले सम्भवतः हमारे गाँव-नगर उतने गन्दे नहीं थे, उस वक्त सफाईके कितने ही नियम पालन किये जाते थे। दूसरे देशोंमें सफाई करनेवाले लोगोंको घृणाकी नजरसे नहीं देखा जाता, यद्यपि वहाँ भी उन्हें मजूरी ज्यादा नहीं मिलती। आदमी पाखानेकी सफाई करके अपने हाथोंको धो लेता है, आवश्यकता होनेपर कपड़ा बदल लेता है, फिर उसके साथ खाने-बैठनेमें किसीको एतराज नहीं

होता। हमारे यहाँ जो लोग सफाईके सबसे गंदे कामको करते हैं, वही सबसे नीच समझे जाते हैं।

आजसे सवासौ वर्ष पहले जब जंगलमें मंगल करनेके लिये मधुपुरीकी नींव पड़ने लगी, उस समय पाखाना साफ करनेवालोंकी भी यहाँ आवश्यकता पड़ी। आस-पास जंगल बहुत और बीचमें दूर-दूर दस पाँच बँगले थे। यदि बसनेवाले भारतीय परम्पराको अपनाते, तो वह जंगलको टट्टीके लिये इस्तेमाल कर सकते थे। पर, अंग्रेज इसके अभ्यस्त नहीं थे। उनके घरोंमें पाखानेका प्रबन्ध आवश्यक था, बंगलेसे अलग नहीं, उसी बाथरूम (स्नान-कोष्ठक) में, जहाँ आदमी नहाता, हाथ-मुँह धोता है। अगर पाखानेको अच्छी तरह साफ नहीं रखा जाता, तो शयनकक्षमें रहते दुर्गन्ध सही नहीं जाती। घर हो या शहर, पाखानेको नजदीकसे नजदीक रखना बहुत आरामदेह ही नहीं, अस्वस्थतामें उसका लाभ भी बहुत है। सर्द जगहोंमें रजाईके नीचेसे निकलकर यदि बाहर दूरके पाखानेमें जाना पड़े, तो निमोनिया हुए बिना नहीं रहे। मधुपुरीके बँगलोंके लिये जिस तरह और सेवक-परिचारक आये, उसी तरह पाखाना साफ करनेवाले भी पहुँचे। नीचेके शहरोंमें उन्हें ५ रुपये तनखाह मिलती, यहाँ उन्हें १२-१५ रुपये मिलती। जहाँ आमदनी अधिक हो, वहाँ आदमी खिचकर पहुँच जाता है। जिस तरह यहाँके रिक्शेवालों, बोझ ढोनेवालों, चौकीदारों और दूसरे सेवकोंका काम खास-खास जिलोंकी इजारेदारीमें हैं, उसी तरह पाखाना साफ करनेवाले भी अधिकतर बिजनौर जिलेसे आते हैं। पाखाना साफ करनेवालोंका मधुपुरीमें शुरूमें क्या नाम था? भंगी, हलालखोर, या क्या? किन्तु, आज सब लोग उन्हें जमादार कहते हैं। जो परिचित नहीं हैं, उनको पहले-पहल यह नाम खटकता है। बिजनौर जिलेके जमादारोंने यहाँकी विलासपुरियोंमें ही नहीं, बल्कि केदारनाथ और बदरीनाथमें भी इस कामको सम्भाल लिया है।

[illegible]में विलासपुरियोंको वह सुभीते नही [illegible] हैं। घरोंमें पानीका नल नहीं था, और भिश्ती पीने तथा नहाने-धोनेके लिये पानी लाते थे। सड़कोंपर विजली की वत्ती भी नहीं थी, और जब पहले उसका रवाज हुआ, तो कहीं मिट्टीके तेलके चिरागके रूपमें। वहुत पीछे पानीसे बिजली पैदा की गई, उससे वँगलों और सड़कोंपर रोशनी ही नहीं हुई, वल्कि उसीके जोरसे धाराओंका पानी सब से ऊँचे स्थानोंपर स्थापित जलनिधियोंमें रख कर नलकों द्वारा सारी पुरीमें पहुँचाया गया। कलिम्पोंग जैसी कितनी ही पहाड़ी पुरियोंके खास-खास भागोंमें तवतक कोई आदमी विना फ्लशका वँगला नहीं बना सकता, पर मधुपुरीमें उसका कोई निर्वंध नहीं है। जमादार फ्लशको नहीं चाहेंगे, यह स्वाभाविक है।

भारतमें रहते अंग्रेज जानते थे, कि हिन्दू या मुसलमान सभी हिन्दुस्तानी जमादारोंको सवसे छोटी जात मानते, उनके सम्पर्कसे परहेज करते हैं। शुरू-शुरूमें भारतमें आये कुछ अंग्रेजोंने अपने देश-भाइयोंको यह समझाना शुरू किया था, कि हमें उच्च वर्णके हिन्दुओंके रीति-रवाजको अपनाना चाहिये, यदि हम उनका सम्मान-भाजन वनना चाहते हैं। एकाध अंग्रेजोंने अपने लिये ब्राह्मण रसोइये रक्खे, और चौकीपर वैठकर खाना भी शुरू किया। लेकिन, वह चला नहीं। अंग्रेजोंकी संस्कृतिका तल अधिक ऊँचा था, क्योंकि नवीन युगके आविष्कारों, हथियारों, ज्ञान-विज्ञानमें वह अधिक आगे वढ़े थ। उन्हें जल्दी ही मालूम हो गया कि हमें भारतीयोंकी नकल करनेकी आवश्यकता नहीं, भारतीय स्वयं हमारे पदचिन्हपर चलेंगे। "देर आयद् दुरुस्त आयद्" के अनुसार देर ही सही, पश्चिमकी वहुत-सी वातोंको हमारे देश-भाइयोंने अब स्वीकार कर लिया है, और जो अव भी उनसे अछूते हैं उनके लिये शिक्षा और पैसा भर हाथमें आनेकी देर है। अंग्रेज अफसरों और वनियोंके

रूपमें ही यहाँ नहीं आये थे, बल्कि उनके आनेके पहले ही यूरोपसे पादरी ईसाई धर्मका प्रचार करने भारत पहुँचे थे। अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाके बाद शासकोंका धर्म होनेके कारण उन्हें आर्थिक और दूसरे तरहके बहुतसे सुभीते प्राप्त हुए। हिन्दू धर्मके गढ़को ढहानेके लिये उन्होंने अपनी तोपें लगा दीं, लेकिन वह उतना कमजोर नहीं था, जितना कि उनका राजनीतिक दुर्ग। यदि कोई अपने धर्मको छोड़कर ईसाई बनता, तो उसे अपने सबसे प्रिय रक्त-सम्बन्धियों—माता-पिता, भाई-बहन, नाना-मामा—सबसे हमेशाके लिये नाता तोड़ना पड़ता; यह वे लोग थे, जिनसे स्वाभाविक स्नेह प्राप्त होता, और जिनके साथ अपना आर्थिक स्वार्थ भी सम्बद्ध था। यदि कोई जातकी जात धर्म-परिवर्तनके लिये तैयार हो, तभी यह रुकावटें हट सकती थीं। मुस्लिम शासनके आरम्भमें ऐसा हुआ था जब कि कपड़ा बुननेवाली जैसी बहुत-सी शिल्पकार जातियाँ सामूहिक रूपसे हिन्दू धर्मको छोड़ गईं। पादरियोंको वैसी सफलता नहीं मिली। वह अछूत जातियोंको यह कहकर अपनी ओर खींचने लगे, कि हम मनुष्यको बराबर मानते हैं, किसीके साथ छूतछातका बर्ताव नहीं करते। उन्होंने अपने घरोंमें जिन जमादारोंको रक्खा, उनके हाथकी रसोई भी वह खा सकते थे। दूसरे अंग्रेज भी, यद्यपि पादरियोंकि इतना तो नहीं, पर अछूतको छूत माननेमें हिचकिचाते नहीं थे। आज भी, जब कि बहुत नौकर रखना मुश्किल हो गया है, कितने ही अंग्रेज या ऐंग्लो-इण्डियन परिवारमें जमादार-जमादारिन बावर्ची-खानसामाका काम करते हैं। पौन-शताब्दीसे हिन्दुओंके बड़े नेता कहते आये हैं, कि अछूत हमारे समाजका कोढ़ है, लेकिन जिस गतिसे उसे हटाया जा रहा है, उसे देखते तो शायद उसके दूर होनेमें पीढ़ियाँ लगेंगी। यह जल्दी-तभी दूर हो सकता है, जब कि अछूत समझे जानेवाले स्वयं अपने उद्धारका [illegible] उठायें।

चम्पो जमादारकी लड़की थी, और भारतके स्वतन्त्र होने के बाद पैदा हुई थी। उसके माँ-बाप मधुपुरीके केन्द्रीय बाजारवाली आबादीमें रहते थे। जमादार बहुधा मालिकसे नहीं, बल्कि घरसे सम्बद्ध हैं। नया बँगला बनते ही वहाँ जमादार रख लिया गया। एक शताब्दीके बीच चाहे बँगलेने कितने ही हाथ बदले हों, लेकिन जमादारोंकी चार पीढ़ियाँ बँगलेके साथ चिपकी रहीं। चम्पोके परदादी-परदादा जिस बँगलेमें पहलेपहल आये थे, उसका पहला मालिक कोई अंग्रेज था, लेकिन यह प्रथम महायुद्धसे भी पहलेकी बात है। हर बँगलेके साथ कुछ छोटी-छोटी कोठरियाँ या आउट-हौस रहते हैं। यदि बँगला बाजारसे दूर जंगलमें है, जहाँ जमीनकी इफरात है, तो आउट-हौस बँगलेसे हटकर, नहीं तो पासहीमें उसे बना दिया जाता था। आउट-हौसकी छोटी-मोटी कोठरियाँ वर्षोंसे बँगलोंके किरायेपर न उठनेके कारण अधिकतर सूनी, बेमरम्मत होकर कितनी ही गिर-पड़ रही हैं। लेकिन, चम्पोका परिवार जिस बँगलेके आउट-हौसमें रहता था, उसके लिए यह नौबत नहीं आ सकती, क्योंकि वह बाजारसे सटा था। पुराने समयमें इन कोठरियोंका उपयोग बँगलेके नौकर-चाकरोंके रहनेके लिए होता था, किसीमें दाल चावलकी दूकान या चाय रोटीका होटल खुल गया है, किसी-किसीमें बनिया-बाबू कई किरायेदार भी आ गये हैं। वैसे होता, तो बड़ी जातवाले जमादारके पासकी कोठरीमें रहनेपर एतराज करते, लेकिन वह तो चम्पोके परिवारकी पैतृक कोठरी थी। वह सदासे वहीं रहते थे।

लड़के बहुत देरसे और बहुत मुश्किलसे समझ पाते हैं, कि अछूत क्या बला है। बच्चेकी जातिका हो या छोटी जातिका, छूत हो या अछूत, यदि परिवार अधिक धनी नहीं है, तो उसके लड़कोंमें छूतका भाव मुश्किलसे पैदा होता है। बच्चेकी समझ और उसकी जिद्दके कारण लड़कोंको इकट्ठा खेलने दिया जाता है। जबतक

वह स्वयं छूआछूतको न समझ पायें, तबतक समझाकर या डाँट-मारकर बच्चोंको उससे रोकना मुश्किल है। चम्पोका परिवार जिस बँगलेकी जमादारी करता था, उसके मालिककी लड़की चम्पो ही की उमरकी थी। दोनों बचपनसे खेलते आये थे। जब उसकी सहेली कोई खानेकी चीज माँसे पाती, तो हो नहीं सकता था, कि चम्पोको दिये बिना खाये। छूतछातकी तो बात ही क्या, जूठे-मीठेका भी उसे परहेज नहीं था। एकदिन दोनोंको दाँतकी काटी रोटी खाते देखकर सहेलीकी माँको बहुत बुरा लगा। वह नये विचारोंकी शिक्षिता महिला थीं। छूआछूतका उन्हें उतना ही ख्याल था, जितना कि पीढ़ियोंसे रहनेके कारण रक्तमें अब भी मौजूद रह गया था। साफ-सुथरा रहकर अगर जमादार खाना बना दे, तो उन्हें खानेमें कोई एतराज नहीं था। बड़ी जातिके लोग अछूतसे अपनी देहलीको छुआना नहीं पसन्द करते, बल्कि अपनी किसी चीजपर हाथ लग जानेसे उसे भ्रष्ट समझते हैं। सहेलीकी विदुषी माँ जमादारिनसे अपने सारे काम करवाती थी। रोटी उसके हाथसे उन्होंने कभी नहीं पकवाई। जिन शर्तोंके साथ वह चम्पोकी माँसे रोटी पकवातीं, उनके माननेका मतलब था, चम्पोके परिवारको अपना पुश्तैनी पेशा छोड़ना, और भूखों मरना।

चम्पोकी पाँच वर्षकी सहेलीपर अपने कुलके कितने ही संस्कार पड़ने नहीं पाये थे। दोनों बाहर साथ बैठी गुड़िया खेलतीं, गाना गातीं, कूदती-फाँदती। सहेली कितनी ही बार चम्पोको लेकर अपने सोफेपर भी खेलती। उस समय घरके सयानोंकी त्योरी चढ़ जाती, लेकिन जबतक दोनों सहेलियाँ अबोध थीं, तबतक उधर ध्यान नहीं दिया जाता। दोनों सहेलियाँ बच्ची ही थीं, आपसमें जब मेल होता, तब वह एक प्राण-दो शरीर बन जातीं, और जब किसी कारण झगड़ पड़तीं, तो सहेली कह देती—"जा चम्पो, अब मैं तेरे साथ नहीं खेलूँगी।" आमदनीका नया रास्ता सभी चाहते हैं,

सिवा और रास्ता क्या सूझता ? अपनी विजयसे बहुत प्रसन्न हो, दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं ।

पहाड़में वैसे भी जमीन विकट होती है, इस बँगलेमें तो चट्टानें और पहाड़ सीधे खड़े थे । वहाँ लड़कोंके लिए गिरकर चोट खा लेना बिलकुल आसान था ? दोनों सहेलियोंके घुटने कितनी ही बार फूटे थे, हड्डी नहीं टूटी, तो इसे संयोग समझना चाहिए । एक बार बकरीका एक बच्चा सीधी खड़ी चट्टानपर चढ़ गया । सहेलियों-को खेलकी सूझी । जिधर रास्ता ठीक था, उधरसे रोककर उन्होंने डराना शुरू किया । वह देखना चाहती थीं, कि बच्चा क्या करता है । बच्चा दूसरी तरफ कूदनेके लिए मजबूर हुआ, और १५ हाथ नीचे गिरनेपर उसकी एक टाँग टूट गई । चम्पोका ऐसा खेल माँ-बापको पसन्द नहीं आ सकता था । वह आशा रखते थे, छ महीनेमें हम बच्चों-को बड़ा करके ४०-४० रुपयेमें बेंच देंगे, और बकरीका दाम निकल आनेके साथ ५० रुपया नफा भी हो जायेगा । चम्पोपर उस दिन बड़ी मार पड़ी । ६ वर्षकी बच्चीके लिये वह इतनी अधिक थी, कि डर था कहीं बच्चेकी तरह उसकी भी टाँग न टूट जाये । माँने दौड़कर अपने शरीरसे उसको ढाँक दिया और गुस्सेके मारे पागल बापने उसपर भी एक-दो हाथ छोड़े, गन्दी-गन्दी गालियाँ दीं, और कहा—तूने ही लड़कीको खराब कर दिया ।

जमादारकी तबियत ठंडी होनेमें कई घंटे लगे । फिर माँने कहा—बड़े आदमियोंके बच्चोंके साथ रहनेमें हमारे बच्चे खराब हो जाते हैं । यही बात उलटी रीतिसे चम्पोकी सहेलीकी माँ भी दोहराती, जब उनकी लड़की अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ और बिस्कुटको पसन्द न कर उन्हीं चीजोंकी माँग करती, जिन्हें चम्पो खाती थी ।

:०: :०: :०:

चम्पो अपने माँ-बापकी पहली लड़की थी । सभी माँ-बाप, विशेषकर इस परिवारके जैसे, शिशुपहले बहुत डरते हैं । कोमल शिशु अभी दुनियाकी सर्दी-गर्मीको नहीं समझता, भूत-पिशाच,

दैत्य-दानव शिशुके चारों तरफ मँड़राया ही करते हैं। चम्पोके गलेमें कई गंडे पड़े हुए थे। उसकी माँने बड़ी चिरौरी-मिन्नत करके सयानोंसे पूजा कराई थी। एक बार चम्पोको हलका-सा बुखार आ गया। सयानेने बतलाया : वेमाता माई नाराज हैं, उसको पूजा करो। सयानेके कहनेपर चम्पोकी माँने वेमाताके लिए एक बकरा मान दिया। लेकिन, अब पहलेका जमाना थोड़े ही था, कि दो-चार रुपयेमें बकरीका बच्चा आ जाता। अब तो मधुपुरीमें ढाई रुपया सेर मांस विकता था और बकरेका दाम उसके वजनके अनुसार होता है। बच्चे बकरेका मांस और भी महँगा था। वस्तुत: चम्पोके बापने जब बकरी खरीदी थी, तो उसके मनमें एक यह भी ख्याल था कि उसीके बच्चेसे वेमाताके ऋणसे भी उऋण हो जाऊँगा। चम्पोकी माँने उस दिन पतिको समझा दिया—तुमने बकरेका लोभ किया था, चाहते थे छ महीनेमें बड़ा करके बच्चोंको बेच दें, लेकिन वेमाता और इन्तजार नहीं करना चाहतीं, इसीलिए उसकी टाँग टूटी।

उन्होंने वेमाताके लिए उस बच्चेकी बलि दे दी। वेमाताका आसपासमें कोई स्थान नहीं था, न चौरा था, न कोई मूर्ति, न पत्थरका ढोंग न कोई पेड़। वेमाता तो सब जगह आती रहती हैं, छोटे-छोटे बच्चोंके पास दिनमें दो बार फेरा दिये बिना उसके पेटका खाना हजम नहीं होता। खुश होनेपर वह बच्चोंकी रक्षा करती, किसी बैतालको पास फटकने नहीं देती, और नाराज होनेपर उठा ले जानेमें भी उसे देर नहीं लगती। वेमाताके लिए बकरेकी बलि घरके पिछवाड़े ही दे दी गई। मधुपुरीकी नगरपालिकाने जानवरोंके मारनेके लिए अलग स्थानमें घर बना रक्खे हैं। वेमाताके लिए अपने घरके पास बलि चढ़ाना कानूनके खिलाफ था, लेकिन चम्पोके माँ-बाप यही जानते थे, कि कोई कानून हमारी पूजा-पाठमें बाधा नहीं पहुँचा सकता। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि चम्पोका

परिवार हिन्दू है, जैसे कि मधुपुरीके दूसरे अधिकांश जमादार। उनकी अपनी बिरादरीका एक अच्छा संगठन है। वह यह नहीं पसन्द करते, कि बिरादरीमेंसे कोई निकल जाये। जमादार पीनेके बहुत शौकीन होते हैं, मांस भी उन्हें बहुत प्रिय है। सूअरका मांस कुछ सस्ता मिलता है, शायद इसी ख्यालसे वह उसे ज्यादा पसन्द करते हैं। बिरादरीमें ब्याह-शादी हो या त्योहार, या किसीने कोई कसूर किया हो, इस सबका मतलब है, बिरादरीवालोंको भोज और शराब। महीनेमें ऐसे एक-दो सामूहिक भोज और पान यहाँ होते ही रहते हैं। बिरादरीके लोगोंको बाँधकर रखनेके लिए, यह कम सहायक नहीं होते।

उस दिन वे माताके लिए बलि चढ़ाई गई। उस मांसमेंसे चम्पोकी माँने अपनी मालकिनको भी देना चाहा। पुराने बन्धन और मर्यादाएं इतनी तेजीके साथ टूट रही हैं, इसका उदाहरण यहाँ सामने मौजूद है। मालकिनका परिवार न जाने कितनी पीढ़ियोंसे मांसका नाम सुननेके लिए तैयार नहीं था, लेकिन अब उनकी रसोई मांसके बिना सूनी-सूनी मालूम होती। उनको प्रसादसे क्या एतराज हो सकता था? यदि चम्पोकी माँ उसे अपने हाथसे, लेकिन जरा सफाईके साथ पकाकर लाती, तो वह उसे भी स्वीकार कर लेती। लेकिन, यह "सफाई" की शर्त बहुत कठोर थी, जमादारके कुलकी स्त्रीके लिए अपनी सफाईके बारेमें निश्चित पूरा विश्वास दिलाना आसान नहीं था। चम्पोके परिवारके लोग दूसरे जमादारोंकी तरह "आज कमाया, आज उड़ाया" के माननेवाले थे, महीनेकी तनखाहके ऊपर वह बराबर कर्ज लिया करते, कपड़ेका दाम भी नहीं जमा कर पाते। चम्पोकी माँपर दया करके मालकिन अपनी कोई पुरानी साड़ी दे देतीं। इसी तरह अपनी लड़कीका उतरना चम्पोको पहननेके लिए मिल जाता। इन कपड़ोंको साफ करनेके लिए साबुनका दाम कहाँसे आवे? वह बहुत मैले-कुचैले रहते "सफाई" के खिलाफ गवाही दे देते।

चम्पो अपनी जातिके और बच्चोंसे अधिक भाग्यशालिनी थी। उसके मालिक छूआछूत नहीं मानते, इसलिए बचपनसे ही वह अपने मालिककी लड़कीके साथ जहाँ चाहती, वहाँ खेलती रहती। यदि किसी बातसे कभी मालकिनका मन प्रसन्न न होता, तो भी वह उसे डाँटती-फटकारती नहीं थीं। अपनी लड़कीको यदि वह प्लेटमें खाना देतीं, तो चम्पोको पुराने अखबारपर रख देतीं, यदि लड़की मेजपर खाती, तो चम्पो वहीं पैरोंके पास फर्शपर बैठकर खाती। दोनोंके खानेकी चीजोंमें इस समय कोई भेदभाव नहीं रक्खा जाता। वह कहाँ बैठकर खा रही है, कैसे खा रही है, इसके बारेमें सोचनेकी चम्पोको जरूरत नहीं थी, जबतक कि उसे भी वही परौठा और वही तरकारी मिल रही है, जो कि उसकी सहेली खा रही है। उसे अपनी मालकिनके लिए कृतज्ञ होनेकी भी आवश्यकता नहीं, कि मैं जमादारकी लड़की बड़ी जातिके मालिकके घरके भीतर बैठकर खा रही हूँ। उसने कभी देखा नहीं, कि जमादारकी छाया पड़ जानेसे खानेहीको नहीं, बल्कि पहननेकी चीजोंको भी शुद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ती है। उसके पासकी कोठरियोंमें जो बाबू-बनियोंके परिवार थे, वह छूआछूत बहुत मानते थे। लेकिन, बँगलेके मालिक उनसे कहीं इज्जतदार और धनीमानी थे। जब वहाँ उसके साथ कोई छूआछूत का बर्ताव नहीं किया जाता, तो अपनी माँ जैसी चीकट कपड़े पहननेवाली बनियाइनोंकी वह क्यों पर्वाह करती?

मधुपुरीमें वैसे अब वर्षोंसे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है, पर, हरेक माँ-बापपर उसे लागू करनेकी कोशिश नहीं की जाती। कानूनके धनी-धोरी समझते हैं, कि जिस माँ-बापको पर्वाह होगी, वह अपने आप अपने बच्चोंको स्कूलमें भेजेंगे। चम्पोको स्कूल जानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उसका भी जल्दी ही अपने जैसे किसी छोटे लड़केसे ब्याह हो जाना था, फिर कुछ और सयानी होनेपर दूसरे जमादारके घरमें बहूके तौरपर रहेगी। फिर उसे भी

किसी बंगलेमें झाड़ू-बुहारू करना होगा, बच्चोंके बरतनोंको साफ़-सुथरा रखना पड़ेगा, और मर्दोंकी तरह अपनी कमाई करके खाना होगा। मधुपुरीमें सड़कोंकी सफ़ाई नगरपालिकाके जमादार करते हैं, जमादारिनोंके लिए वहाँ कोई काम नहीं है। जब चम्पाको बड़ी होकर यही करना है, तो स्कूलमें जाकर पढ़नेसे उसे क्या फ़ायदा था? लेकिन, उसकी सहेलीको बड़ी चिन्ता थी। उसके माँ-बाप समझते थे, लड़कीको दो साल पहले ही स्कूलमें बैठा देना चाहिए था, बहुत देर हो रही है। उनके वर्गमें दस-पाँच हज़ार तिलक-दहेज देनेहीसे काम नहीं चलता, बल्कि लड़केवाले देखते हैं, कि लड़की कितनी पढ़ी लिखी है। यदि चम्पाकी सहेली अनपढ़ रह गई, तो चाहे वह कितनी ही अनिंद्य सुन्दरी हो, उसे अच्छे और धनी वर्गके वर मिलनेकी सम्भावना नहीं है। माँ-बाप यद्यपि स्कूलमें नहीं भेज सके थे, किन्तु घरपर स्वयं और मास्टरको रखकर उसे पढ़ा रहे थे। लड़कीकी जब मौज होती तो पढ़ती, नहीं तो खेलने चली जाती और मास्टरको घण्टा पूरा करके लौट जाना पड़ता। स्कूलमें जानेपर वह ऐसा नहीं कर सकती थी, इसीलिए चम्पाकी सखी बहुत उदास होकर अपने दिलके दुःखको प्रकट करती—तब मैं तेरे साथ कैसे खेलूँगी? सारा दिन तो स्कूलमें बीतेगा, शाम-सवेरे कितना समय मिलेगा?

: o : : o : : o

सहेली अब स्कूल पढ़ने जाया करती थी। शुरू दिनोंमें उसका मन नहीं लगा, कभी आधे ही दिनमें स्कूलसे भाग आती, और चम्पाके साथ खेलने लगती। मुश्किल यह था, कि चम्पा काम [illegible] लगी थी। यदि उसके खेलनेका स्थान [illegible] सामने न होता तो दोनों बराबर खेलती रहती। चम्पाका मन उदास रहता। उसके और बहन-भाई थे, [illegible] घरमें [illegible] थी। चम्पा सबसे बड़ी थी। [illegible] छोटोंके साथ खेलनेमें उसे आनन्द नहीं आता था। उसकी आँखों [illegible]-

परिवारकी लड़की थी, उसकी बातचीतमें उसे जितना मजा आता था, उतना दूसरी जगह कहाँसे आता ? कभी-कभी सोचती, भी क्योंमें न स्कूल जाया करूँ। लेकिन, माँ-बाप इसकी इजाजत नहीं देते थे। छोटे बच्चोंको सँभालनेका काम उसका था। बकरी हर साल दो बारमें चार बच्चे जनती, जिनके चरानेका कामभी उसी को करना था। चम्पो दिनभर टकटकी लगाये उसी रास्तेकी ओर देखती, जिससे उसकी सहेली पढ़कर लौटती। सहेली कभी-कभी दो-तीन और लड़कियोंके साथ हँसती-खेलती, कूदती-फाँदती आने लगी। उनको देखकर चम्पोके कलेजेमें काँटा-सा चुभने लगता। वह उसे एकमात्र अपनी सहेली रखना चाहती थी। उसकी सहेली पास पहुँचते ही हँसकर कहती—चम्पो, देख यह मेरी सहेली कुसुम है, और यह है गइतिरी। वह अपने भोलेभालेपनसे सहेलियोंको बतलाती—"यह मेरी बड़ी अच्छी सहेली चम्पो है। यह बहुत अच्छा गाना गाती है, अच्छी बात करती है। हम अन्धेरा होते तक साथ खेलते हैं।" ...दूर रहकर नहीं, बल्कि चम्पोके कन्धेपर हाथ रखकर बात करती। उसकी स्कूलकी सहेलियाँ उमरमें बड़ी नहीं थीं, लेकिन वह दूसरे ही वातावरणमें पली होनेसे यह जानती थीं कि जमादारकी लड़कीको छूया नहीं करते।

चम्पोके सामने उन्होंने नहीं बतलाया, किन्तु पीछे समझाना शुरू किया—जमादारकी लड़कीको नहीं छूया करते। वह गन्दी होती है। पाखाना फेंकती है। तुम्हें ऐसा करते सुननेपर स्कूलकी बहनजी नाराज होंगी, हमारी दूसरी सहेलियाँ तुम्हें जामादारकी लड़की कहने लगेंगी।

"जमादारकी लड़की कहने लगेंगी"—यह सुनकर चम्पोकी सहेलीका दिल दहल गया। वह चम्पोको अपनी सहेली मानती थी, लेकिन यह माननेके लिए तैयार नहीं थी, कि मैं भी उसीकी तरह जमादारकी लड़की हूँ। स्कूलकी सहेलियाँ अब अधिक और अधिक

परिवार मधुपुरी लौटा, तो चम्पो नहीं थी। सामने होते ही मालिकने जब पूछा, तो जमादारिनने सिसक-सिसककर कहना शुरू किया—"चम्पो हमारी चली गई। वह छोटी बीबीजीको बहुत याद करती थी। जिस दिन दोपहरको एक हिचकी आकर मेरी बच्ची सदाके लिए चुप हो गई, उस दिन बहुत जिद्द कर रही थी : मुझे मेरी सहेली के पास ले चलो। मैं यहाँ नहीं रहूँगी।" इसी समय मालकिन भी आ गई, वह अपने आँसुओंको रोक नहीं सकीं और कहने लगीं—"कैसी सुन्दर लड़की थी!"

—हाँ बीबीजी! सब कहते थे, बड़े आदमी जैसी लड़की, वैसे ही बोलती भी थी।" चम्पोकी माँकी हिचकी बँध गई, आँचलसे उसने अपनी आँखोंको पोंछ लिया। मालकिनने सान्त्वना देनी चाही। भोलीभाली माँने करुण स्वरमें कहा—"मनको बहुत समझाना चाहती हूँ, लेकिन क्या करूँ, कलेजा फटने लगता है, जब मेरी चम्पो याद आती है। अब वह कभी नहीं दिखेगी, अब वह कभी [illegible] बीबीजीके साथ नहीं खेलेगी।" चम्पोका खेलना तो पहले ही [illegible]द हो गया था। माँ-बापके सिरसे एकका बोझ कम हुआ, लेकिन अपने बच्चेको कौन बोझ समझता है?

✻

८

मीनाक्षी

मधुपुरीको अंग्रेजोंने अपनी विलासपुरीके तौर-पर बनाया था और बहुत समयतक वह एकमात्र उन्हींकी विलासपुरी रही। पीछे सामन्त-वर्ग अर्थात् राजा-महाराजा-तालुकदार लोग भी "ग्रीष्म काले च शीतलं" की प्रसिद्धि सुन कर इधर दौड़ने लगे। पहले तो उनकी संख्या बहुत कम थी और दूसरे अंग्रेजों के रंगभेदके कारण उन्हें बहुत बच-बचकर साधारण स्थानोंमें रहना पड़ता था। अभी उनके अन्तःपुरोंमें सात-सात ताले लगे हुये थे, इसलिये यहाँ कोई अपनी रानी या बेगमके साथ आता भी था, तो उसे सात तालोंका इन्तजाम करना पड़ता था। २० वीं शताब्दीके आरम्भके साथ मधुपुरीका यौवन खतम होने लगा। इस समय अभी-अभी अन्तःपुरोंमें जरा-जरा आधुनिकताका प्रकाश पड़ने लगा था। पहले महायुद्धके समय मधुपुरीका बुढ़ापा आ गया। इसी समय अन्तःपुरिकाओंके सात ताले टूटने शुरू हुये। अन्तःपुरके दरवाजे तो उस समय तोड़े गये, जब कि द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। महायुद्धके बाद ही अंग्रेज बोरिया-बँधना बाँधकर चल पड़े। अब मधुपुरी हमारे सामन्तोंके लिये मुक्त-भोग्या थी। बहुतेरे अन्तःपुर शताब्दियों-का अन्धकार खोकर प्रकाशमें आ गये। जिनके यहाँ अब भी कुछ रोक-थाम थी, वहाँकी भी अन्तःपुरिकायें मधुपुरीमें आकर कितनी स्वच्छन्दविहारिणी हो गईं, यह इसीसे मालूम होगा कि एक दिन राजस्थानकी एक ठकुरानी अपनी बहू और बेटीके साथ मुँह खोले ही नहीं घूम रही थीं, बल्कि उनके गंगा-जमुनी केशोंपर भी आँचल नहीं था। जब इसी समय उनके सामने अपनी सम्बन्धिनी आ...

तब बेचारीने हड़बड़ाकर सिरको ढंक लिया । आजन्म बन्दिनियोंकी जब यह हालत है, तो उनके बारेमें क्या कहना, जो २०-२५ वर्ष पूर्व अन्तःपुरमें पैदा हुईं । पर यह चाँदनी चार दिनकी ही साबित हुई । यद्यपि अन्धेरी रात फिर नहीं आई, किन्तु सामन्तोंके लिए तो इस स्वच्छन्दताके साथ-साथ मौतका वारण्ट कट गया—रियासतें और तालुकदारियाँ खतम हो गईं और नपे-तुले मिलनेवाले पैसेको निस्संकोच खर्च नहीं किया जा सकता ।

अन्तःपुरोंमें आधुनिकता एक रूप और एक मात्रामें नहीं प्रविष्ट हुई । इस शताब्दीके आरम्भमें कुछ अन्तःपुरोंके फाटक बिलकुल खोल दिये गये, दूसरोंमें केवल दरारसे ही प्रकाश जाने लगा, इसलिये अन्तःपुरिकाओंके विकास भी असमान हुए । तो भी उन्हें यह सुभीता जरूर था, कि राजाओंके आपसमें विवाह-सम्बन्ध थे, और २०वीं सदीमें राजपूत राजाओंने—जिनकी भारी संख्या रियासतों तालुकदारियोंमें थी—जात-पाँतके बारेमें बड़ी उदारता लायी । धर्मशास्त्रमें सर्वथा निषिद्ध समुद्र-यात्रा राजपूतोंने ही से पहले शुरू की । सौ वर्ष पहले उनमेंसे जो विलायत गये, वे अपने साथ गंगाजल ही नहीं, बल्कि भारतकी मिट्टी भी हाथ धोनेके लिए ले गये थे । मालवीयजीने तो इस तरहकी भूल वर्त्तमान शताब्दीके प्रथम पादके अन्त होनेके समय भी की और तिलक जैसे राष्ट्रनेता ने भी विलायतसे लौटने पर पापका प्रायश्चित्त करना आवश्यक समझा, लेकिन राजपूत राजाओंके दिलसे यह ख्याल बहुत जल्दी उतर गया । राजस्थानी राजपूत राजा कच्ची-पक्की और खाने-पीनेमें छूतका ख्याल नहीं रखते थे, न चौके-चूल्हेसे उनको सरोकार था । उनके महलोंमें एक फर्लांगसे सभी तरहके बने हुए कच्चे-पक्के भोजन जूते पहनकर नौकर लाते-ले जाते थे, और खानेके समय एक पाँतमें उनके साथ ही मुसलमान भी खा सकते थे । हाँ, जातिका बन्धन जरूर था, खानदान देखते थे

और खाँटी राजपूतके साथ ही व्याह-शादी करते थे। लेकिन हजार-डेढ़ हजार वर्ष बाद इतिहास फिर दुहराया गया, पैसे और तलवारके बलपर पहले भी जातियाँ बनती और बिगड़ती थीं, और अब फिर वैसा ही होने लगा। हमारी आँखोंके सामने तिरुवांकुर, कोचिन, पुद्दूकोट्टै जैसे कुछ राजाओं को छोड़कर बाकी सभी रियासतोंके स्वामी विवाहसूत्रसे एक दूसरेके साथ बँध गये। लोग आँखें मलकर देखते ही रह गये, कि कलके कुम्हार, गड़रिये, कुर्मी, जाट, कलवार और दूसरी जातियोंके राजा कैसे राजपूत बन गये ? लेकिन जिनके घरोंमें खाँटी सूर्यवंशियों, चन्द्रवंशियों या अग्निवंशियोंकी राज-कन्यायें आ गईं, उन्हें आप कैसे राजपूत छोड़कर दूसरा कह सकते हैं ? विवाह-सम्बन्धसे अन्तःपुरोंपर बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ने लगा। जो राजकन्या कभी अन्तःपुरकी चहारदीवारीके भीतर बन्द नहीं रही, वह व्याह होकर सासुरेमें आने पर कैसे पर्देको स्वीकार कर सकती थी ? आखिर व्याह भी जान-सुनकर हुआ था, न राजकुमार नाबालिग थे, न उनकी परणीता। पहले साड़ी पहनकर सिर ढाँके, मुँह खोले शर्मीली आँखोंवाली कोई रानी जब बाहर दिखाई पड़ती, तो लोग चकित होकर देखते। लेकिन मधुपुरीके लिये वह कुछ भी नहीं थी, उसे तो यहाँ पुराणपंथिता कहा जाता। आज अपने सारे लम्बे बालोंको रखना कोई राजकुमारी पसन्द नहीं करती, सभीके बाल कटे हुए हैं, लेकिन आधुनिकताका प्रभाव सबपर एक-सा नहीं है। ऐसी रानियाँ हैं, जो पतलून पहनकर घूमती हैं, उनके बाल भी कटे हुए हैं, पति क्या अपने बच्चोंसे भी वे केवल अंग्रेजीमें बोलती हैं और नौकरों-चाकरोंसे हिन्दी बोलना होता है, तो उच्चारण और व्याकरणमें अंग्रेज-मेमोंके कान काटती हैं। तो भी उनका सिन्दूर नाककी जड़से शुरू होता है, नाकमें लौंग पड़ी है, सासुओंके पगे लगनेमें पुरानी बहुओंसे कोई अन्तर नहीं रखतीं और पौढ़ने पर सासूके पैर

भी दाव आती हैं। मन्दिरों और पूजास्थानोंमें बड़े भक्ति-भावसे दण्डवत्-प्रणाम करती हैं। ऐसी रानियों या राजकुमारियोंको कैसे आप शुद्ध आधुनिक कह सकते हैं ?

जिनके कुलमें आधुनिकताकी तीसरी पीढ़ी चल रही है, वहाँ कुछ और ही डौल दिखलाई पड़ता है। चाहे दोनों तरहकी राजकुमारियाँ वालकटी और पतलून पहने घूम रही हैं, किन्तु दोनोंको एक-सा देखनेमें फर्क साफ मालूम हो जाता है। पूर्णतया आधुनिक तरुणीकी नाक छिदी नहीं मिलेगी, न उसे लौंग पहननेकी आवश्यकता है। उसके ललाट और माँगमें सिन्दूर भी नहीं दिखाई पड़ेगा। सिनेमा-तारिकाओंको इसका धन्यवाद देना चाहिए, कि उनके निकाले फैशनके कारण कभी-कभी इन आधुनिकतम रानियोंके ललाटपर भी कोई छोटी-सी विन्दिया दिखाई पड़ जाती है। घुट्टीके साथ उन्होंने पाश्चात्य या आधुनिक सभ्यताको अपनाया इसलिए उनकी किसी बातमें बनावट नहीं मालूम होती, उनके परिधानसे, तलून, कमीज या कोटसे यह साफ मालूम होता है। यद्यपि इसका :ह मतलब नहीं, कि कृत्रिम शृंगारसे वे अपनेको बचा सकती हैं।

आधुनिकतम राजकुमारियाँ सीजनमें मधुपुरीमें काफी देखी जा सकती हैं। शामके वक्त होटलों और रेस्तराओंकी नृत्यशालाओंमें उन्हें बाल-डान्स करते देखा जा सकता है। किसी भी बड़े कर्मचारी या मन्त्री का स्वागत हो, वहाँ वे जरूर पहुँची रहती हैं। कुलकी मर्यादाका ख्याल करके उन्हें अगली पंक्तिमें स्थान दिया जाता है। अन्त:पुरके अन्धकारमें जिस तरह वे पहले गुमनामसी रहा करती थीं, अब उसी तरह सम्यग् उजागर दीखती हैं।

मीनाक्षी ऐसी ही आधुनिकतम राजकुमारी हैं, जिनको मधुपुरीमें गर्मीके सीजन में ही नहीं, उसके बाद भी देखा जा सकता है। धूप हो तो उन्हें वर्दीधारी रिक्शेमें ही देखा जायगा, नहीं तो मधुपुरीकी प्रधान सड़कपर वह पैदल भी घूमती मिलेंगी। मीनाक्षी उनके लिए

अनुपयुक्त नाम नहीं है, वल्कि पिछले हजार वर्षोंमें हिमालयसे कन्याकुमारीतक, आसामसे राजस्थानतक फैले इस विस्तृत महादेशमें यदि किसीके लिए मीनाक्षी शब्दका ठीकसे उपयोग किया जा सकता था, तो इन्हींके लिए। इतनी वड़ी आँखें देखनेके लिए आपको जैन हस्तलिखित पुस्तकोंके पन्नोंको उलटना पड़ेगा, न ऐसे किसी देवताकी झाँकी करनी पड़ेगी, जिसके चेहरेकी अपेक्षा कहीं अधिक वड़ी आकारकी आँखें ऊपरसे चिपका दी गई हों। सचमुच जीते-जागते, चलते-फिरते मनुष्यमें ऊपरसे वड़ी आँखोंका चिपकाया जाना असम्भव है, लेकिन असम्भव वात मीनाक्षीके लिए सम्भव हो गई है। उनकी आँखोंके समान भौंहें नहीं हैं, इसलिये उन्हें पतली करते समय वरावर काली पेन्सिलसे रेखाको लंबा करना पड़ता है। आधुनिकतम होने पर भी वह सभी प्राचीन शृंगार-सामग्रियोंको वायकाट करनेके लिए तैयार नहीं हैं। सुरमा नहीं, वल्कि घना-काला काजल उनको वहुत पसन्द है, और उसे आँखोंमें लगाते समय सलाईको अंगुल-डेढ़-अंगुल आँखोंकी कोरसे वाहर खींचना पड़ता है। आँखोंकी वृद्धि करनेमें इससे तो कोई सहायता नहीं मिलती और उसकी जरूरत भी नहीं है, लेकिन भौंहोंकी पंक्ति इससे जरूर वढ़ जाती है। उभरे हुए सफेद अक्षिगोलकोंमें चमकती काली पुतलियाँ अद्भुत हैं। अगर नकली वालोंकी तरह नकली आँखें भी चिपकाई जा सकतीं, तो मीनाक्षीकी दोनों आँखें लाखों—करोड़ोंकी नहीं वल्कि अनमोल होतीं। मीनाक्षी कभी अपने भालको किसी रंगकी विन्दीसे कलंकित नहीं करतीं। उनके वाल कटे, घुँघराले और खुले रहते हैं। उनकी माँ भी जव-तव पुत्रीके वेपमें ही मधुपुरीमें दिखाई पड़ती हैं। देखनेवालोंको भ्रम हो जाता है, कि शायद दोनों छोटी-वड़ी वहनें हैं। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि माँको भी मीनाक्षी जैसी आँखें मिली हैं। जव पहली पीढ़ी ही वाल कटा पतलून पहन विल्कुल आधुनिक वन गई, तो नई पौधके वारेमें क्या कहना?

मीनाक्षीकी आँखोंके देखनेके बाद एक बार उनके नख-शिखपर नजर डालने पर ब्रह्माकी बुद्धिपर तरस आता है। आँखें देनेमें जब उसने इतनी उदारता दिखलाई, तो और बातोंमें इतनी कृपणता करके अपनी हीनहृदयताका परिचय क्यों दिया ? चेहरा आँखोंके अनुरूप बिलकुल नहीं है। वह लम्बा, निर्मांसल और बेपानीका है। बेचारी मीनाक्षी गालोंको बारबार रूज लगाकर लाल करती रहती हैं, ठुड्डियोंपर भी लेप करती हैं, चेहरा तो हर वक्त बड़ी सावधानीके साथ लगाये मुखचूर्णसे ढँका रहता है। लेकिन, दर्पणमें देखते हुए वह अच्छी तरह समझ सकती हैं, कि दुश्मन ब्रह्माकी करतूतके ऊपर मैं किसी तरहसे भी पर्दा नहीं डाल सकती। शायद इसीलिये खीझकर वह अपने होठोंपर उतर आती हैं। सचमुच यदि किसी तरुणीको मन-मन भर लिपिस्टक लगानेवाली कहा जा सकता है, तो मीनाक्षी को ही। उनके कटे हुए काले केश किसी भी सुन्दरतम सिनेमा-नायिकाके केशोंसे होड़ ले सकते हैं, लेकिन मुखकी ओर देखनेसे मन उतर जाता है। ब्रह्माकी रेखपर मेख कौन लगा सकता है ? आँख छोड़ मीनाक्षीके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेमें उनका सारा शरीर शामिल है। हाथ और पैर मानों लकड़ीके गढ़कर चिपका दिये गये हैं। जिनको छिपानेके लिए सबसे अच्छे पतलून और सबसे भड़कीला कोट भी समर्थ नहीं है। मीनाक्षीको लाल रंग बहुत ज्यादा पसन्द है, यह ओठोंके अधर-रागसे ही नहीं मालूम होता, बल्कि अधिकतर उनके शरीरपर देखे जानेवाले लाल कोटसे भी मालूम होगा। कभी-कभी खिलाड़ियोंका कोट भी वह पहनती हैं, यद्यपि यह कहना मुश्किल है, कि उन्हें किसी प्रकारके खेलका कोई विशेष शौक है। यदि मौसिमकी जबर्दस्त माँग न हो, तो मीनाक्षी केवल कमीज और पतलूनमें घूमती रहें। इससे कुछ सौन्दर्यका भ्रम जरूर हो जाता है, यदि आदमीकी नजर चेहरेपर न जाये। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि चेहरेपर जानेपर भी यदि आदमीकी

नजर केवल उन विशाल आँखोंको ही देखती रहे, तो वह उनकी प्रशंसामें कालिदाससे लेकर आजतकके सभी महाकवियोंकी हजारों पंक्तियोंको पढ़नेका आनन्द ले सकता है। हाथ पैरोंका ही अनुकरण उनकी सारी शरीरयष्टि करती है, जहाँ मांस बहुत कम दिखलाई पड़ता है, और चर्वी तो कहीं है ही नहीं। इस शरीर-यष्टिके लिये कद भी कुछ लम्बा और अनुकूल नहीं है। चलनेमें वह न गजगामिनी हैं, न हंसकी-सी चालवाली। बोलनेमें बचपनसे ही अपनी अंग्रेज आयाओं और दूसरी शिक्षिकाओंके निर्देशनमें उन्होंने नाकसे धीरे-धीरे बोलनेका अभ्यास डाला, लेकिन उससे स्वर-माधुर्य नहीं हुआ।

मीनाक्षीके साथ भी २० वीं शताब्दी तोताचश्मी, अर्थात् उन्हें प्रेमवंचिता करे, यह सरासर अन्याय है। ऐसी अनमोल आँखों-का ग्राहक न पैदा हो, इससे बढ़कर पुरुषकी कृतघ्नता और क्या हो हो सकती है? क्या राजकुल में किसी भी कवि-हृदय या कविता-पारखी राजकुमारको पैदा करनेकी शक्ति नहीं है। यदि एक-एक दोहे और एक-एक श्लोकपर पुराने राजा लाखों अशर्फियाँ देते थे, उनके आधा राजपाट बकसनेकी भी बात सुनी जाती है; तो मीनाक्षी-की सचमुच मीन जैसी—मीनमें भी सिघी, रोहू या चिल्हवा जैसी साधारण मछलियाँ नहीं, बल्कि ठीक शफरी जैसी आँखोंपर मरनेवाले किसीको पैदा न करके ब्रह्मा, सचमुच ही तूने अपनेको पाषाण-हृदय साबित किया। अगर यह मृग और कमलको मात करनेवाली आँखें अन्तःपुरमें छिपी होतीं, कोई राजकुमार उन्हें देख नहीं पाता, तब यदि उनके साथ ऐसा बर्ताव हुआ होता, तो किसी को दोष नहीं दिया जा सकता था; किन्तु आज तो मधु-पुरीकी एकमात्र प्रधान सड़कपर ये मीन जैसी आँखें वर्षमें छ महीने बराबर घूमती रहती हैं। सभी देखनेवाले उन असाधारण आँखोंको आँख बचा अतृप्त होकर अवलोकन करना चाहते हैं। राजकुमारी

मीनाक्षी अपने वंशके अनुरूप कुमारको ही वर सकती हैं; साधारण वाबू या सेठ वर्गका तरुण उनके हाथोंकी ओर अपना हाथ नहीं फैला सकता। मधुपुरीकी सड़कोंपर पिछले दस वर्षोंमें जबसे कि मीनाक्षीका मधुपुरीमें हर साल आना जाना रहता है, हजारों कुमार गुजरे होंगे। संसार कितना कठोर है। और अब, जब कि वह समय भी नजदीक आ रहा है, जब कि उजड़े बहारमें बुलबुलोंका चहकना बन्द हो जायगा। पुराने अन्तःपुरकी कुमारियोंके भाग्यपर मीनाक्षी अब ईर्ष्या कर सकती है, जिन्हें एकान्त जीवन इस तरह वितानेकी आवश्यकता नहीं होती थी। पति देवता घरमें आ जानेपर ही नवपरिणीताका मुख देख सकते थे, उनकी ओरसे देखनेके लिये भेजी गई लौंड़ियोंसे कुछ भेंट दे सर्टिफिकेट ले लेना मुश्किल नहीं था। यदि कोई सीखी-समझी लौंड़ी मीनाक्षीकी आँखोंकी प्रशंसामें विहारीके कुछ दोहोंको उद्धृत करती, तो उसपर झूठ बोलनेका इलजाम भी लगाया नहीं जा सकता था। अधर-राग, रूज, मुखचूर्ण, खिजाव कुछ ही दिनों तक यौवनकी आयुको बढ़ा सकते हैं, लेकिन असली वसन्तमें जब भँवरे नहीं आये, तो वनावटी वसन्तमें उनके आनेकी क्या सम्भावना हो सकती है ?

मधुपुरी अब गौरांगोंकी नहीं रही, शासनके लिहाजसे ही नहीं, बल्कि प्रभावके ख्यालसे भी। देशमें अंग्रेज और दूसरे यूरोपियन मिशनरी बहुत थोड़ेसे जहाँ तहाँ रह गये हैं, जिनमें से कुछ गर्मियोंमें मधुपुरीमें भी चले आते हैं। भारतीय भाषाओंके सिखलानेके लिये एक ही केन्द्रीय स्कूल होनेके कारण उनकी संख्या दो-तीन सौ हो जाती है। उनमें कुछ गौरांग महिलायें भी होती हैं, लेकिन, जिस तरह यूरोपके छटुये पुरुष मिशनरी बनकर दुनियाके और देशोंकी तरह भारतमें ईसा मसीहका झण्डा गाड़ने आते हैं, उसी तरह वहाँकी छटुई स्त्रियाँ इस क्षेत्रमें कदम रखती हैं। सुन्दरियों नहीं, यदि कुरूपाओंकी प्रतियोगिता करनी हो, तो विश्वकुरूपायें इनमें मिल

सकती हैं। फिर वह मधुपुरीमें फैशनकी डिक्टेटर कैसे बन सकती हैं? दूसरी गौरांगनायें दिल्लीके दूतावासोंकी होती हैं, लेकिन उनकी संख्या अत्यन्त अल्प तथा वह भी एक कोनेके होटलमें रहती हैं। हाँ, उनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता, कि उनमें सौन्दर्यका अभाव है। इस प्रकार मधुपुरीके रूपके बाजारमें अब केवल स्वदेशी महिलाओंका ही आधिपत्य है, जिसके लिए हरेक देशाभिमानीको उचित अभिमान होना चाहिए। कमसे कम इस एक क्षेत्रमें तो, चाहे अपने देशके भीतर ही सही, अपनी महिलाओंका नेतृत्व स्थापित हो चुका है। कितने ही लोग इसे "देशी चिड़िया मराठी बोल" या "देशी बोतलमें विलायती शराब" कहकर उपहास करेंगे, लेकिन दोष निकालनेवाले खलोंका तुलसीबाबाके समयमें भी अत्यन्ताभाव नहीं था।

मधुपुरीके रूप-हाटमें देशी सुन्दरियोंकी प्रधानता है, जो तीन वर्गोंमें साफ बटी हुई हैं। परम्पराका अनुसरण करते हुये हम कह सकते हैं, कि पहली श्रेणी राजाङ्गनाओं और राजकुमारियोंकी है, जिनमें मीनाक्षी तथा उनसे अधिक सौभाग्यशालिनी भूतपूर्व अन्तः-पुरिकायें या उनकी सन्तानें हैं। दूसरी श्रेणी नौकरशाहीके घरोंमें पली तितलियोंकी है, जो आधुनिकपनमें सामन्तनियों और सामन्त-कुमारियोंसे अधिक प्रौढ़ हैं, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। तीसरी श्रेणी सेठानियों और सेठ-कुमारियोंकी है। इनके बाद नगण्य बाबुआनियों और दूसरोंकी, जिनको न हम तीनमें रख सकते हैं, न तेरहमें।

फैशनके बाजारमें केवल रूपका शासन नहीं, वहाँपर भी लक्ष्मी ही प्रधानता रखती हैं। लक्ष्मीसे मतलब सौन्दर्य-लक्ष्मी नहीं बल्कि धन-लक्ष्मीसे है। फैशनकी दुनिया सबसे अधिक खर्चीली है, इसलिये वहाँ लक्ष्मीका एकमात्र आधिपत्य हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। पुराने जमानेमें भी कहा गया था "व्यापारे वसति लक्ष्मीः," लेकिन उस समय यह वाक्य आधे दिलसे ही निकला था।

शासन सामन्तोंके हाथमें था, जिनकी तलवारें महासेठोंके भी खजानेको क्षण भरमें लूटकर अपना घर भरनेमें समर्थ थीं। इसलिये लक्ष्मीके स्वामी उस समय केवल सेठ नहीं थे। अब जब कि हमारे देशका शासन भी सेठोंके हितके लिये हो रहा है, तो उनका स्थान कुछ दूसरा ही हो गया है; ऐसा स्थान, जो इतिहासमें उन्हें कभी नहीं मिला था। वे ही शासन-सूत्रके वास्तविक सूत्रधार हैं। उनके घरोंमें बैंकों, बीमा कम्पनियों और चोरबाजारोंके रूपमें सचमुच कल्पवृक्ष लगे हुये हैं, सोनेकी टकसाल तैयार है। उनकी सम्पत्तिकी सीमा नहीं है। आज किसी बड़े सेठको लखपति क्या करोड़पति कहना अपमान की बात है। यह सेठ-वर्ग मधुपुरीके लिये सबसे नया रंगरूट है। संख्यामें वह अभी सामन्तों और नौकरशाहोंके बराबर नहीं है, लेकिन अंग्रेजोंकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ उन्हींके हाथोंमें हैं; जिनमें दस-बीस नौकरोंके साथ रहनेकी केवल वही हिम्मत कर सकते हैं। यद्यपि सेठ तरुण-तरुणियोंके भीतर आधुनिकताकी बाढ़ फूट पड़ी है, लेकिन पूरे वेग से नहीं। उनके तरुण घरके कितने ही संकोचोंको मधुपुरीमें भी लाते हैं, और पैन्टपर बन्द गलेका कोट पहनकर चलते हैं। उनमें जो ह्वाइटवे-लैडलाके सूटको मधुपुरीके लिये खासकर खरीदकर लाते हैं, वे यह भी भूल जाते हैं, कि कोट पैन्टके साथ चलनेकी चाल दूसरी होती है। वह ऐसे चलते हैं, कि मालूम होता है, अपने बाप-दादाकी तरह धोती और चौबन्दी पहने जा रहे हैं। उनकी बातोंमें भी आधुनिकताकी छाप बहुत कम मिलती है। वह यह नहीं समझते, कि मधुपुरीकी यह एकमात्र प्रधान सड़क केवल अंग्रेजी बोलनेके लिये है। कमसे कम आधुनिक वेषभूषामें सज्जित नर-नारीके लिये सौगन्ध है, कि वह अंग्रेजी छोड़कर किसी और भाषाको अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ भी बोले। ये सेठ-कुमार गाँठके पूरे भले ही हों, लेकिन उनकी आँखोंमें अभी देखनेकी

ताकत नहीं आई है । वह कभी आपसमें मारवाड़ी बोल देते हैं, या गलत-सलत हिन्दी उनके मुँहसे निकल आती है, जिसके कारण आधुनिक नर-नारी उनकी ओर मुस्कुराकर देखते हुये आपसमें व्यंग करते चले जाते हैं । इनको अभी अपना दोष मालूम नहीं हो रहा है, लेकिन टीका-टिप्पणियोंकी भनक कभी-कभी तो उनके कानोंमें पहुँच ही जाती है ।

अन्त:पुर पचासों पीढ़ियोंसे देशकी सबसे अधिक सुन्दरियोंका संग्रहालय ही नहीं, बल्कि सुन्दरियोंकी नर्सरी भी रहे । वहाँ ही अनिन्द्य सुन्दरियाँ पैदा होती थीं, जो किसी समय स्वयम्वरोंमें पारितोषिकके तौरपर रक्खी जाती थीं । शायद स्वयम्बर-प्रथाके उठ जाने कारण ही अन्त:पुरोंने सुन्दरियोंके नर्सरी होनेके अपने विशेष पदको खोया । उसी अन्त:पुरसे कुमार भी पैदा होते हैं और कुमारियाँ भी । यदि कुमारोंमें आप कुरूपोंकी संख्या अधिक देख रहे हैं, तो कुमारियोंमें भी सौदर्यकी मात्रा उनसे बढ़कर नहीं है । जिस समय देशकी सौन्दर्यराशि खिचकर महलोंमें आती थी, और हमारे ऋषि मुनियोंने विधान बनाया था "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि' उस समय, वस्तुत: सौंदर्यके हाटमें अन्त:पुरोंका एकाधिपत्य था । अब तो क्या है ? तो भी, सेठानियों और सेठ कुमारियोंसे मुकाबिला करने पर अभी सामन्त वर्ग बहुत आगे है, यह मधुपुरीमें आसानीसे समझा जा सकता है ।

इन दोनों श्रेणियोंके अतिरिक्त तीसरी श्रेणी नौकरशाहोंकी है । बुद्धिजीवी शिक्षितवर्गको भी एक हाड़-माँसके होनेके कारण हम इनके भीतर रख सकते हैं, लेकिन यह साफ है कि पिछली तीन दशाब्दियोंमें स्वयम्वर-प्रथाके अनुसार सुन्दरियोंका वितरण सारे शिक्षितवर्गमें नहीं बल्कि नौकरशाह श्रेणीमें हुआ है ... ई० ... एस० दामाद पानेके लिये कितने ही पिता लोग ... करते थे, जैसे राजर्षि भगीरथ । वह अपना सब

पैदा हुई लड़कीको सुशिक्षित करते, आधुनिक समाजके रीतिरिवाजों के सीखनें, समझने और आचरण करनेमें अपनी कन्याको निष्णात करते और विलायतसे लौटे दामादकी सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिये कन्याको हर गुणसे अलंकृत करनेमें कोई कसर नहीं उठा रखते। प्राचीन स्वयम्बर-प्रथा और इस स्वयम्वर-प्रथामें अन्तर इतना ही था, कि जहाँ पहले निर्वाचनका अधिकार कन्याको था, वहाँ अब वह स्वयं वरको था। अंग्रेजोंके समय साल में २५–५० आई० सी० एस० हो पाते थे, जिनके लिये हजारों नव-शिक्षिता सुन्दरियाँ जयमाल लिये खड़ी रहतीं। एक साल असफल होनेपर भी वह और उनके अभिभावक हताश नहीं होते थे। वह तबतक खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा करती रहतीं, जबतक कि जयमाल मुरझा नहीं जाती। इस प्रकार सौंदर्य-निर्वाचनका क्षेत्र सामन्त और सेठवर्गमें नहीं, वल्कि नौरकरशाह-वर्गमें चला आया था, यह बिल्कुल स्पष्ट है। मधुपुरीमें सेठ और सामन्तवर्गकी ललनायें नौकरशाह-पत्नियों और पुत्रियोंके सामने उसी तरह निष्प्रभ मालूम होती हैं, जिस तरह सूर्यके सामने दीपक। कुछ सामन्त अब भी अधिक पैसे खर्च कर सकते हैं। सेठ-कुमारियोंके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं। पुराने सेठ अपने सपूतों और सपूतनियोंकी शाहखर्ची देखकर हार्टफेल कर जाते, लेकिन सौभाग्यसे वह मधुपुरीमें पैर नहीं रखते। खर्चके हिसाबमें चौकसीकी विद्या चोरबाजारीने यदि बूढ़ोंको सिखायी है, तो नौजवान उनसे पीछे क्यों रहें ? बूढ़े या प्रौढ़ सेठको अपने खर्चका लेखा-जोखा देनेके लिये तरुण सेठ मजबूर भी नहीं हैं। संयुक्त-परिवार अब इस वर्गमें भी बड़ी तेजीसे टूट रहा नहीं, वल्कि टूट चुका है। सेठ-पत्नियाँ और पुत्रियोंमें से अब उनकी जातीय वेषभूषा जैसे उठ चुकी है, वैसे ही शील-संकोच भी खतम हो चुका है—बुरे अर्थोंमें हर्गिज नहीं। जिस तरह पिंजड़ेमें बन्द अन्तः-पुरिकाओंने अपनेको आजाद किया उसी तरह सेठ-परिवार भी

आगे बढ़ रहा है। उम्रके अनुसार इनमें भी आधुनिकताके प्रभावका तारतम्य देखा जा सकता है। अधिक उमरवाली सेठानियां साड़ी और ऊँची एड़ीके बूटमें भी वैसी ही चलती हैं, मानों लम्बा-चौड़ा घाघरा और चुनरी पहने हुई हों। आजकलकी सिनेमा-तारिकाओंकी नकलपर थोड़ेसे किन्तु बहुत कीमती आभूषणोंसे अपने-को सजा धजाकर निकलनेपर भी मालूम होता है, कि उनका हाथ कभी-कभी अपने सिरपरके बोरको ढूँढ़ा करता है। प्राचीन प्रभाव अभी जड़से निकला नहीं है, लेकिन उनके लिये क्या इतना कम है, कि अब वह आर-पार दिखनेवाली महीन चुनरीके पटतक घूँघट और खुली तोंद लिये अपनी सासुओंकी तरह नहीं निकलतीं, उनकी पोशाकमें एक तरहकी नफासत और संजीदगी मालूम होती है। जब उनके पति लोग कोट पैन्ट पहन कर भी हंसकी चाल नहीं अपना पाते, तो इनका क्या कसूर है? लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि लंकामें विभीषण या विभीषणायें नहीं हैं। अब वैसी भी अपेक्षाकृत प्रौढ़ सेठानियाँ देखी जाती हैं, जो नौकरशाह-पत्नियोंकी तरह ही अपनी लड़कियोंसे राजस्थानी या हिन्दीमें नहीं, बल्कि अंग्रेजीमें बातें करती हैं। "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" के ऋषिवाक्यको ताकपर रखकर अब तो सेठ-पत्नियाँ अकेली विमानोंपर आकाशमें विचरण करती दिखाई पड़ती हैं। अति तरुण सेठानियाँ अब ठीक उसी रास्तेपर चल रही हैं, जिसपर आजकलकी सामन्त-पत्नियाँ और नौकरशाह-ललनाएँ। यही दोनों उनके सामने आदर्श हैं। अभी मधुपुरीमें उनमेंसे बहुतोंमें नौसिखियापन दिखाई पड़ता है, लेकिन कोई-कोई आगे बढ़नेमें काफी सफल हुई हैं। अब तो सेठ-कुमार और सेठ-कुमारियाँ यूरोपियन ढंगके स्कूलोंमें शिक्षि[illegible] दीक्षित होने लगे हैं। समुद्रयात्रासे धर्म मिट जाता है—की [illegible] उनके लिये एक उपहासकी चीज रह गई है और

पुत्र अव घड़ल्लेसे यूरोप और अमेरिकाकी सैर कर रहे हैं। कितने ही प्रौढ़ विधुर सेठ पत्नीके मर जाने पर यूरोपीय सेठोंके ढंगका एकपत्नीव्रत पालन कर रहे हैं। तरुण सेठ आज विलायतसे लौटकर आनेवाले नौकरशाहोंसे कम पाश्चात्य प्रभावको अपने समाजमें नहीं प्रवेश करा रहे हैं।

सामन्त, नौकरशाह और सेठ तीनों एक ही नावपर चढ़े हुए हैं। उनका जीवन एक दूसरेके बहुत नजदीक और समान होता जा रहा है। भारतकी अपनी विशेपताको लीजिये। यह जात-पाँतकी रूढ़ि है, जो कि एक नावमें वैठी हुई इन तीनों श्रेणियोंको एक होनेमें वाधा डाल रही है। यूरोपमें भी कभी राजकुल सामन्त-कुलोंके साथ रक्त-सम्मिश्रण नहीं होने देता था और दोनों धन्नासेठ वनियों को दूधकी मक्खी मानते थे। लेकिन अव वहाँ एकता देखी जाती है। लक्ष्मीपुत्र सभी एक जाति के हैं। हमारे देशमें भी कवतक यह मृत रूढ़ि चलती रहेगी? समय दूर नहीं है, जव तीनों श्रेणियाँ उसी तरह मिलकर एक हो जायँगी, जिस तरह इस शताब्दीके आधे कालमें भारतकी सभी रियासतोंके राजा एक राजपूत विरादरीमें मिल गये। लक्ष्मीपुत्रों और सत्ताधारियोंके खिलाफ एक नया वर्ग भी तैयार हो रहा है, उसकी आवाज धीरे-धीरे जोर पकड़ रही है, और भारतकी अडिग प्राचीनतापर विश्वास रखनेवालोंको उससे डरनेकी जरूरत नहीं। उस समय शायद मीनाक्षीकी आशाका क्षेत्र बहुत विशाल होता।

अवश्य आनेवाला जमाना आयेगा, लेकिन कव आयेगा? उस वक्त आनेपर क्या हुआ "जव चिड़ियाँ चुग गईं खेत", "का वर्षा जव कृपी सुखानी"। मीनाक्षीके लिये उससे क्या आशा हो सकती है? आज तो उसका क्षेत्र नंगे हों या भूखे, सामन्तोंकी श्रेणीतक ही सीमित है। सेठों और नौकरशाहोंके विस्तृत क्षेत्र तक आधुनिकतम होते भी वह अपने पैरोंको नहीं रख सकती। वह मनमें सिर्फ यही ख्याल रख

सकती है, कि मेरी श्रेणीकी दूसरी लड़कियाँ कदम आगे बढ़ाकर उस युगको जल्दी लायें। अपनेको आगे बढ़ानेकी हिम्मत न रखकर वह अपनी आधुनिकतापर बट्टा लगा रही है, इसमें सन्देह नहीं। मीनाक्षीकी इस दयनीय और दुविधा भरी स्थितिको देखकर हजारीबाग जेलके वार्डर बलिया जिलेके तिवारी याद आते हैं जो ५० के करीब पहुँच रहे थे और अबतक कुँवारे ही थे। उन्हें आशा नहीं रह गई थी, कि ब्याह कभी भी हो सकेगा। बड़े दयनीय स्वरमें बेचारे कहते थे "आखिर सगैया (विधवा-विवाह) होई, लेकिन...तिवारीके मुश्रा के।" अगर तिवारीजीसे कहा जाता, कि आप ही क्यों न किसी ब्राह्मणी बाल विधवाका हाथ पकड़ते, तो उन्हें भी मीनाक्षीकी तरह ही आगे कदम बढ़ानेमें डर लगता। वह चाहते थे, दूसरे पहले करके रास्ता बनायें, तब मैं उसपर कदम रखूँगा।

गोलू

—राम राम बाबूजी।

—राम राम गोलू,—मैंने कहा।

मधुपुरीमें गोलकी श्रेणी के लोग आपसमें ही राम-राम कहते हैं, नहीं तो अधिकतर यहाँ अपनेसे बड़े वर्गके लोगोंको सेठजी कहकर सम्बोधित किया जाता है। लेकिन, गोलू अधिकतर राम राम ही कहता है। इसे बुढ़ापेका असर कह सकते हैं। गोलू यद्यपि अभी ५० वर्षसे ऊपर नहीं गया है, लकिन देखनेमें बहुत बूढ़ा मालूम होता है। जाड़ोंके दिन थे। सैलानी अक्टूबरके दूसरे सीजनको भी खतम करके अपने घरोंको लौट गये थे। दूसरे सीजनमें पहले सीजनके छठेंसे भी कम ही लोग आते हैं, लेकिन तो भी बुझते हुये दीपककी तरह उनके कारण मधुपुरीमें एक बार फिर जीवन आ जाता है—मजदूरोंको काम मिल जाता है, बनियों और दूकानदारोंकी कुल चीजें बिक जाती हैं। लेकिन नवम्बरके मध्यतक पहुँचते-पहुँचते यहाँ वही लोग रह जाते हैं, जिनका और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। मैं भी उन्हीं में से हूँ, और गोलू भी। शायद इसीलिये हम दोनोंमें भाईचारा स्थापित हो गया है। उस दिन घण्टा भर रात गये सड़कके किनारे वह सूखी लकड़ियाँ जमा करनेकी कोशिश कर रहा था। चाँदनी रात थी, लेकिन वहाँ वृक्षोंकी छाया थी। उँगली जैसी पतली छोटी-छोटी पाँच-छ लकड़ियाँ उसने जमा करके बत्तीके खम्भेके पास रक्खी थीं। दिनमें उसे आसानीसे और अधिक अच्छी लकड़ियाँ मिल जातीं, पर दिन तो उसके लिए कामके वास्ते बना है। जब कभी काम नहीं

सम्बलसे वह मनभरका वोझ पीठपर लादे तेज नहीं चल सकता, यह स्वाभाविक है। दो मील जाना दो मील आना तो आम तौरसे उसे करना पड़ता ही है, कभी-कभी इस छोरसे मवुपुरीके अन्तिम वाजारके अन्तिम छोरतक भी वोझ ले जाना पड़ता है, उस वक्त उसे चार मील आना चार मील जाना पड़ जाता है। आठ मीलसे कम तो शायद ही कभी गोलूको जाना-आना पड़ता हो। वोझ मिल जाये, तो वह वारह मील या अधिक भी हो सकता है। वह नपी-तुली चालसे चलता है, जिसे मन्द नहीं कहा जा सकता। सुस्तानेका हरेक स्थान निश्चित है। वस्तुतः उसको चलते और वैठते देखकर मालूम नहीं होता, कि कोई आदमी चल रहा है। उसकी क्रियाएँ यंत्रवत् होती हैं। रास्तेमें कोई परिचित मिल गया, तो राम-राम कर दिया,नहीं तो पैरोंसे धरतीको नापना और ठहराव-पर थोड़ी देरके लिये दम लेना, वस यही देखा जाता है। गोलूको ७ लद्दू पशु याद आते हैं। फर्क इतना ही है कि पशु अपनी इच्छासे इस तरह नहीं कर सकता, लेकिन गोलू सव कुछ अपनी इच्छासे करता है। उसे जीना है, जीनेके लिये खाना चाहिये। मवुपुरीकी साढ़े छः-सात हजार फुटकी ऊँचाईपर जाड़ोंमें वर्फ पड़ा करती है। जाड़ा हो या गर्मी, वसन्त हो या वर्षा, गोलूके लिये सव वरावर है। शरीरको और पैरोंको ढाँकनेके लिये काफी कपड़ा न हो, तो यहाँ आदमी एक ही दिनमें टें वोल जाय। जाड़ेके निवारण-के लिये गोलू कैसे कपड़े पहनता है, इसे पाठक स्वयं जान सकते हैं। कवाड़ियेके यहाँसे वर्षों पहले पुराना ऊनी कोट और पायजामा उसने लिया था, जिसमें साल-व-साल और पैवन्द लगते गये। उन्हें धोवीको धोनेके लिये गोलू देगा, इसकी सम्भावना नहीं। उसने स्वयं भी कभी उनको पानीमें डाला हो, इसमें भी संदेह है। पैरोंमें मोटरके टायरका वना हुआ एक जूता भी कवाड़ीसे उसने खरीदा।

सिरपर गढ़वाली टोपी जरूर रहती है, जो शायद गंजी चाँदकी रक्षा कुछ कर सके—गोलू गंजा नहीं है।

गोलू क्यों इस तरह सारे दिन पशु बना रहता है ? शायद माल ढोनेवाले खच्चर भी दिनमें इतने घण्टे काम करनेके लिये तैयार नहीं होंगे। उसका यह काम जवानीके समयसे ही चल रहा है। पहले शायद कुछ दूसरी तरफ भी आकर्षण रहे हों, किन्तु वह अब नहीं है। पहाड़के लोग मशक्कत करके चूर हो जाते हैं, तो सस्ती शराबसे गलेको तर कर दु:खों और चिन्ताओंको भूलनेकी कोशिश करते हैं, लेकिन, गोलूको मैंने कभी शराब पिये नहीं देखा। मधुपुरीके इस छोरपर शराब बहुत सस्ती बिकती है। यहं वै ा शराब नहीं होती बल्कि पास-पड़ोसके इलाकेमें पहाड़ी जन-जातिके लोग रहते हैं, जो अनादि कालसे अपने घरोंमें नाजको सड़ाकर शराब बनाते आये हैं। शायद सरकार उनके इस हकको छीनना नहीं चाहती। छीननेपर भी उसमें सफलताकी आशा कम है, क्योंकि वहाँकी शत-प्रतिशत जनता अपने इस सनातन हकको छोड़नेके लिये तैयार नहीं है। सस्ती शराब पीनकी इच्छा रखनेवाले लोग मधुपुरीके छोरोंपर पहुँच जाते हैं, और ६० रुपये बोतल पीनेवालोंके लिये दूकानें जाड़ोंमें कम हो जानेपर भी नगरीके केन्द्रमें बराबर बनी रहती हैं। गोलूका यह जीवन कब खतम होगा, इसे कोई नहीं कह सकता। बर्फानी रातोंमें उसकी छातीमें जरूर सर्दी लगकर दर्द होता होगा, किन्तु यदि वह दर्दकी पर्वाह करे, तो जीवन-नैयाको कैसे खेयेगा ? गोलूको देखकर सैलानियोंमेंसे शायद एकके दिलमें भी ख्याल नहीं आता होगा, कि यह मनुष्य होकर भी ऐसा जीवन बितानेके लिये क्यों मजबूर है ? जो उसे जानते हैं, उनमेंसे भी बहुत कमके दिलमें ऐसा भाव उत्पन्न होता होगा, जिसे करुणाका हल्का-सा रूप कह सकते हैं। शायद वह गोलू-जैसे और कितनोंहीको रोज देखा करते हैं। लेकिन, यह गलत है। मधुपुरीमें गोलू जैसा जीवन बितानेवाला

मैंने तो किसीको नहीं देखा। दूसरे यदि उसके जैसे कोई होंगे भी तो वह दुनियामें अकेले नहीं होंगे, स्त्री, बेटी-बेटा या कोई यार-मददगार उनके जरूर होगा।

:o: :o: :o:

वर्तमान शताब्दी शुरू ही हुई थी। भारतके बहुत से भागोंमें उस समय आबादी आजकी दो-तिहाई भी नहीं थी, अर्थात् खानेवाले मुँह अभी एक-तिहाई कम थे। आजके बूढ़ोंकी बातपर यदि विश्वास किया जाय, तो सत्ययुग अभी धरतीपरसे बिल्कुल उठा नहीं था। इसमें तो शक नहीं, कि उस समयतक केदारखण्डके पहाड़ी लोग चोरी करना नहीं जानते थे, झूठ बोलना सीखा नहीं था। देशके आनेवाले यात्री उनके भोलेपनको देखकर सराहना करते नहीं थकते थे। उस समयके बूढ़े अपने सत्ययुगको अपने बचपनमें खींच कर ले जाना चाहते हैं। रुपयेका बीस सेर गेहूँ और डेढ़ सेर घी होना बतलाते थे, कि लोगोंके पेटकी समस्या आज जैसी कठिन नहीं हुई थी। चाहे रुपयेका मन या दो मन गेहूँ क्यों न बिके, लेकिन जब सभी आदमियोंको सालमें कुछ महीनोंके लिये ही काम मिले, तो सस्ता होनेपर भी वह खानेके लिये अनाज खरीद कैसे सकते थे? जो भी हो, इसी समय केदारखण्डके एक ऊँचे पहाड़ी गाँवमें गोलूका जन्म हुआ था। बाप जवान था, उसकी पहली बीबी भी जवान थी और शायद गोलू दोनोंका पहला लड़का था। पहला नहीं तो माँकी जीवित सन्तानोंमें वह एकमात्र था। भारतके और प्रदेशोंकी तरह यहाँ भी हरेक लड़के-लड़की जीनेके लिये पैदा नहीं होते। उनके जीवनकी अवधि निश्चित है। कोई पैदा होते ही मर जाता, कोई कुछ महीने या कुछ वर्षों बाद बचपनमें ही बिना खिले मुर्झा जाता है। पूरी जवानीपर पहुँचनेवाले आधे भी नहीं होते और आधी शताब्दी लाँघनेवाले तो विरले ही होते हैं। लेकिन, बच्चा चाहे महलमें

वस्तुतः बच्चेके अपने भीतरसे पैदा होती है। फिर जैसे-जैसे वह होश सँभालता है, वसे ही वैसे उसके चारों ओरकी परिस्थितियाँ वास्तविकताके समझनेमें सहायता करती हैं। गोलू और गरीब बच्चोंकी तरह ही शैशवसे बचपनमें पहुँचा। बकरी जितनी नहीं, पर बकरीके बराबर ही दूध देनेवाली उसके घरमें दो-तीन गायें थीं, उतनी ही बकरियाँ भी थीं। बैलके लिए खेत नहीं था, इसलिए गोलूके बापने माँग-जाँच कर ही काम निकालना पसन्द किया था, नहीं तो दोनों पति-पत्नी छोटी-छोटी कुदालोंके सहारे ही खेती कर लिया करते थे। लँगोटी लगानेकी योग्यता जब नहीं थी, तभीसे गोलू अपने पशुओंको जंगलमें ले जाने लगा। इसमें चरवाहीसे भी ज्यादा उसे खेलका आकर्षण था, और रोज गाँवके और बच्चोंकी तरह वह भी गाँवके ऊपरवाले काफी दूरपर बचे-खुचे जंगलोंमें चला जाता। साथमें भुना हुआ दाना या रोटीका टुकड़ा होता। वह अपने पशुओंके साथ ही शामको घर लौटता। नदी दूर थी। गोलूके गाँवमें सर्दी बारहों महीने कुछ न कुछ बनी ही रहती थी। लोग पानी झरनेका पीते थे; जो बराबर ठण्डा रहता। लेकिन, नहानेको वहाँ शौकीनी माना जाता, इसलिए गोलू भी बचपनसे ही उसकी अवश्यकता नहीं समझता था। गरीबोंके पास पहननेके चिथड़े ही होते हैं, और चिथड़ोंका धोना उससे भी वंचित होना था। ऐसी गुदड़ियोंमें यदि जूयें और पिस्सू बराबरके लिए अपना डेरा डाल दें, तो आश्चर्य क्या? उनके काटनेकी फिकर वही करते हैं, जिनको इत्तिफाकसे कभी उनका सामना करना पड़ता है।

गोलू १४-१५ वर्षका हो गया। अब वह उन सभी कामोंको कर लेता था, जिन्हें उसके बाप-माँ कर सकते थे। कुदाल लेकर खेत गोड़ना, फसलकी निकाई करना, जंगलसे काटकर पीठपर लकड़ी ढो लाना, खेतोंमें खाद पहुँचाना, किसीके यहाँ खरीदे ऊनको चलते-बैठते तकुएपर कातते रहना आदि-आदि। आजके गोलूको देखकर

कैसे कोई समझ सकता है, कि वह कभी गाता भी था। उसकी तान पहाड़में दूर-दूर तक गूँजती थी ? वह छोरियोंसे गानेमें होड़ लगाता था। गोलूको सुरीला कण्ठ मिला था, यह नहीं कहा जा सकता। वैसे पहाड़के तरुण-तरुणियाँ देशकी अपेक्षा अधिक सुकण्ठ होते हैं। गोलू अपने गाँवके उत्सवोंमें नाच भी सकता था। यद्यपि वह राजपूत था, लेकिन पहाड़के गरीब राजपूत कई ऐसी बातें करनेमें स्वतन्त्र हैं, जो देशमें नहीं होतीं। राजपूत क्या ब्राह्मण भी यहाँ विधवा-विवाह कर सकते हैं। स्त्री पसन्द न आने पर पुरुषको छोड़कर दूसरेकी बन सकती है, यदि नया पति विवाहका खर्च लौटानेके लिये तैयार हो।

गोलूके घरमें फसलके वक्त पेटभर खानेको मिलता, बाकी समय आध पेट भी मिल जाये, तो वह इसे अपना सौभाग्य समझता था। ऐसे पखवारे भी आते थे, जब अन्नके नामपर जंगलसे जमा किया हुआ साग, कन्द या कुछ फल ही प्राप्य थे। लेकिन, जब वसन्तके समय काफल पक कर लाल होता, तो लड़के और तरुण "काफल पाक्यो" गाते नाचने लगते। उन्हें यह नहीं मालूम था, कि बड़ी गुठली और थोड़े गूदेवाले इस फलमें विटामिन और तामा कूट-कूटकर भरा हुआ था, जो स्वास्थ्यके लिये सबसे लाभदायक चीज है। उन्हें तो यही मालूम था कि देर तो होगी, लेकिन चाहनेपर काफलके रससे अपने पेटको भर सकते हैं। निश्चिन्तताका जीवन समाप्त होते-होते अब अपने अन्तपर पहुँच रहा था, और चिन्ता अपने पैरोंको बड़ी तेजीसे आगे बढ़ा रही थी। गोलूके लिये माँ-बापकी झिड़की और थप्पड़ मामूली-सी बात थी। लेकिन, जवानीपर पहुँचते-पहुँचते अब वह पहलेकी तरह उसे बर्दाश्त करनेके लिये तैयार नहीं था। माँ बेचारीने तो वर्षोंसे उसे कभी छूआ नहीं था।

:o: :o: :o:

गोलू १७ वर्षका था, जब कि उसकी माँ मर गई। आखिरी बच्चा पैदा होते ही चल बसा, साथ ही माँको जल्दी [illegible]का निमन्त्रण

दे गया। बाप अभी जवान था। उसे व्याह करनेकी इसलिये भी आवश्यकता थी, कि घरमें रोटी पकाकर देनेवाला कोई नहीं था। पर, अभी वह उसके लिये जल्दी नहीं कर रहा था, क्योंकि पैसेका सवाल था। पहाड़में आम-तौरसे लोग तिलक पानेकी आशा नहीं रखते, बल्कि उन्हें पैसेसे लड़कीको खरीदना पड़ता है। गोलूकी माँके खरीदनेमें उसके बापका सबसे अच्छा खेत बिक गया था। यह भी एक कारण व्याहके ख्यालको मुल्तवी रखनेका था। जीवन बड़े संघर्षका था, पर लड़का कमाने लायक हो गया था। पहाड़के लोग बदरी-केदारकी यात्राके महीनोंमें तीर्थयात्रियों या उनके सामानको पीठपर ढोते हैं। लेकिन, आस-पासके सभी गाँववालोंके टूट पड़नेके कारण माँगसे पूर्त्ति अधिक हो जाती है, जिसके कारण मजूरी गिर जाती है। फिर तीर्थयात्रियोंमें सभी बड़े धनी नहीं हुआ करते, इसलिये वह पैसेको बहुत संकोचसे खर्च करते हैं। मधुपुरी जैसी विलासपुरियोंमें मजदूरी अधिक मिलती, आदमियोंकी माँग भी अधिक थी। गोलूके गाँवके दो-तीन आदमी मजूरी करने मधुपुरी पहुँच चुके थे। गोलूने भी भाग्य-परीक्षा करनी चाही। बापने बड़ी खुशी-खुशी एक दिन उसे विदा किया, उस दिनसे उसका यह जीवन आरम्भ हुआ था, जो आज भी चला जा रहा है। मधुपुरीमें आने पर उसे मालूम हुआ कि जो बातें उसने सुन रक्खीं थीं, वह सब उसी तरह नहीं हैं। इधरके पहाड़ी और नेपाली पहाड़ी दोनोंकी होड़ थी। नेपाली दूना बोझ उठा सकते हैं, इसलिये वह अपेक्षाकृत सस्ती मजूरी भी ले सकते हैं। लेकिन, आजसे तीस वर्ष पहले जब गोलू मधुपुरीमें आया, बोझा ढोनेमें नेपालियोंका वह एकाधिपत्य कायम नहीं हुआ था, जो आज है।

मधुपुरीमें आकर कुछ दिनों उसे बैठा रहना पड़ा, वह घरसे बाँधकर लाये आटेकी रोटी नमकके साथ खाता रहा, फिर कुछ ढुलाईका काम मिला। अन्तमें उसे रिक्शाका घोड़ा बनना पड़ा।

बँधी हुई मजूरी होनेसे रिक्शा खींचना इवरके पहाड़ियोंका काम हो गया है, जब कि बोझा ढोना नेपालियोंका काम है। किरायेपर ६ आदमियोंने मिलकर एक रिक्शा ले लिया, और उसे लेकर अड्डोंपर वह मुसाफिरोंकी प्रतीक्षा करते। अभी मोटरें बहुत कम देखनेमें आती थीं। मधुपुरी आनेवाले सैलानी उस वक्त साधारण लोग नहीं थे—अंग्रेज साहेबोंके बाद बड़ी संख्यामें राजा और नवाब यहाँ आते थे, फिर बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी अफसरोंका नम्बर आता था। यही कारण है, जो उस समय भी मधुपुरीके पहाड़के नीचे काफी मोटरें देखी जा सकती थीं। मधुपुरीतक अभी मोटर-सड़क बननेमें एक दशाब्दीकी देर थी, नहीं तो वह यहाँ भी पहुँच गई होतीं। इसके फलस्वरूप रिक्शावालोंको ढोकर लानेके लिय नीचेसे सवारी मिल जाती थी। रिक्शावाले यही कोशिश करते कि किसी अंग्रेजकी सवारी मिले। वह बिना माँगे ही मजूरी देनेमें बड़ी उदारता दिखलाते थे। राजा-नवाबके नौकर मजूरीमें कुछ अपने लिये रखना चाहते थे, तो भी दूसरे नम्बरपर वह उनको पसन्द करते थे। बाबुओं-बनियोंकी सवारी उनके लिये किस्मत फूट जाने जैसी थी। पहाड़में चाहे बोझा ढोना हो, या रिक्शा खींचना; चढ़ाई में आदमीका प्राण निकल जाता है। लेकिन, जो उनपर चढ़कर चलते हैं, वह इसे खेल समझते हैं, और बहुतेरे तो मुफ्त जैसी सवारी करना पसन्द करते हैं। आजकल भी आम-तौरसे देखा जा सकता है—लोग अड्डेपर बिना किराया दिये बैठ जाते हैं—किराया ठीक करनेकी जरूरत भी नहीं, क्योंकि सभी जगहोंका किराया नगरपालिकाने बाँध दिया है। अपने स्थानपर पहुँचने पर रिक्शेवाला दरके अनुसार किराया माँगता है, तो उसे झिड़कियाँ ही खानी नहीं पड़तीं, बल्कि बाज वक्त लोग गाली-गलौजपर भी उतर आते हैं। यह रिक्शेवालोंका सौजन्य ही समझिये—जिसे दूसरे दब्बूपन कहलाते हैं—जो हर जगह ले-दे नहीं होने पाती।

पहले ही सीजनमें गोलू रिक्शेवाला बन गया—रिक्शेका मालिक नहीं, वल्कि रिक्शा खींचनेवाला घोड़ा। पैसा मिला, लेकिन उसे खर्च करते वक्त उसे बराबर ख्याल रहता था, कि सीजनके बाद घर लौटना है, कुछ पैसा साथ ले जाना होगा। इसी-लिये खाने-पीनेमें वह बहुत संकोच रखता था। मधुपुरीका पहला ही सीजन (मई-जून) मुख्य होता है, जिसका आधा उसे करीब-करीब बेकारीमें काटना पड़ा था। बरसातके दिनोंमें कभी सवारी मिलती, कभी नहीं मिलती। नवम्बरके शुरूमें जब गोलू दूसरे साथियों की तरह अपने गाँवके लिये लौटने लगा, तो उसने ४० रुपये बचा पाये, इसके अलावा अपने और बापके लिये कुछ कपड़ा भी ले लिया था। कमाऊ पुत्र गरीब बापको पसन्द आते ही हैं। बापकी ओरसे बड़ा स्वागत हुआ। जाड़ा बिताकर उसका फिर मधुपुरी जाना निश्चित था। बापकी बातसे वह सहमत हो गया, जब कि उसने कहा, कि रोटी-पानीके लिये ही नहीं, वल्कि खेती-बारीके काममें सहायता देनेके लिये भी घरमें स्त्रीकी आवश्यकता है। गोलूने समझा, शायद वह मेरी शादीकी बातकर रहा है। वह इसे क्यों न पसन्द करता। उसने अपनी सहमति प्रकट की। अगले साल वह पूरे सौ रुपये बचाकर ले गया। उसे बहुत खुशी हुई, इतना पैसा हाथमें देखनेसे ही नहीं, वल्कि इस ख्यालसे भी कि जल्दी ही उसका ब्याह हो जायेगा।

:o: :o: :o:

ब्याह हुआ, लेकिन गोलूका नहीं, वल्कि उसके बापका। सौतेली माँ कमाऊ गोलूके साथ अपना सम्बन्ध बिगाड़ना पसन्द नहीं कर सकती थी, और न बाप ही। लेकिन, गोलू उनसे खिचा-खिचा सा रहता। बापको डर लगा, कहीं वह हाथसे बेहाथ न हो जाये, इसलिये उसके ब्याहकी बातचीत चलाने लगा, और मधुपुरीके पूरे दस सीजनोंको बितानेके बाद गोलूका भी ब्याह हो गया। वह

इससे पहले ही हो जाना चाहिये था, लकिन वापको जल्दी नहीं पड़ी थी, और सीध-सादे गोलूको आशापर रखना उसने काफी समझा था। गोलू वैलकी तरह कमाकर एक-एक पैसा वचाकर ले जाता, और वाप उसे उड़ानेके लिये तैयार था। उसने अपनी स्त्रीके लिये जेवर वनवाये, वहूके लिये भी वैसे ही चाँदीके कुछ जेवर वना दिये, कुछ लड़कीके वापको देना पड़ा। उससे भी अधिक वापने पीने-पानेमें उड़ाया। यही नहीं, व्याह करनेके वहाने उसने हजार रुपया कर्ज भी लाद लिया। सभी पहाड़ी मजूरोंकी तरह गोलू भी अपनी वीवीको मधुपुरी नहीं लाना चाहता था। मधुपुरीमें जहाँ दूसरी तरहके सैलानी मौज-मेलेके लिये आया करते हैं, वहाँ अंग्रेजोंके समय यहाँ कई सौ फौजी गोरे रहा करते थे, जिनके कारण स्त्रियोंकी इज्जत दिनदहाड़े लुट जाती थी। ऐसी अवस्थामें भला कौन मजूर अपनी स्त्री साथ लाना चाहता ?

गोलूके दो सौतेले भाई भी पैदा होकर वढ़ने लगे। घरके भरण-पोषणका सवसे अधिक भार गोलूके ऊपर था। हाँ, घरमें दो स्त्रियोंके आ जानेसे अव खेतका काम कुछ अधिक मुस्तैदीसे होता था। वकरियाँ भी वढ़ा ली गई थीं, गायें भी पाँच हो गई थीं। उस घरमें और अधिक पशुओंका रखना सम्भव नहीं था, नहीं तो उन्हें और वढ़ने दिया जाता। यदि कर्ज न किया होता तो इसमें शक नहीं, नाज-पानीका काम घरसे चल जाता। लेकिन महाजनका सूद वढ़ रहा था, कर्ज की फिकर वापसे ज्यादा गोलूको थी; यदि सारी जमीन विक गयी तो फिर सीजनके वाद वह कहाँ लौटके जायेगा ? गोलू फिर उसी तरह हर साल मधुपुरी आता, पुराना होनेके कारण अपने रिक्शेके ६ मजूरोंका खुद ही मुखिया हो गया। उससे पूछिये, तो वह इसे भाग्यकी वात समझेगा, किन्तु वस्तुतः यह उसकी मुस्तैदी और मिलनसारी थी, जो उसके रिक्शेकी माँग सवसे अधिक हुआ करती थी, और साल-व-साल वह अधिक रुपया

बचा कर अपने घर लौटता। यदि कर्ज ही बेवाक करना होता, तो इतना समय नहीं लगता, किन्तु बापकी और भी कितनी ही फ़रमाइशें उसे पूरी करनी पड़ती थीं, घरवालोंके लिये एक-दो कपड़ा ले जाना पड़ता; साथ ही बाप इधर-उधरसे उधार लेनेसे बाज नहीं आता था। सारे कर्जको उतारते-उतारते दूसरा महायुद्ध खतम होनेको आया, इसी समय बाप भी चल बसा।

गोलू अब अपने घरका मुखिया था, खानेवाला नहीं बल्कि कमानेवाला, इसलिये भी घरमें उसकी बात बहुत चलती थी। उसके दोनों सौतेले भाई भी उस उमरको पहुँच रहे थे, जिसमें वह पहले-पहल मधुपुरी आया था। उसे अच्छे दिनोंकी आशा होने लगी। रिक्शेवालेको अधिक परिश्रमके कारण छाती और फेफड़ेको नुक्सान पहुँचता है। इसी मेहनतके कारण जवानीमें भी गोलूके शरीरपर अधिक मांस कभी नहीं चढ़ने पाया। उसे आँखों से कम दिखलाई पड़ने लगा, लेकिन यह डर नहीं था कि वह कुछ ही समयमें अपनी आँखोंसे हाथ धोनेवाला है। लड़ाईके बाद दो-तीन सालतक वह किसी तरह मधुपुरी आता रहा, फिर आँखोंकी रोशनी एकदम जाती रही, और वह अपने गाँवमें बैठ जानेके लिये मजबूर हुआ। लेकिन बेबस बैठकर खानेवालेको गरीब परिवार कबतक ढो सकता है? उसका आदर घटने लगा, फिर अवहेलना होने लगी और अन्तमें चारों ओरसे हर वक्त वाग्बाण ऊपर छूटने लगे। गोलू इसका अभ्यासी नहीं था।

मधुपुरी आनेवाले अपने यहाँके एक आदमीसे उसने बड़ी चिरौरी मिनती की, जब मालूम हुआ कि वहाँ हर साल आँख बनाने वाला डाक्टर आया करता है। लोगोंने समझाया—एक बार चली गई आँखकी रोशनी फिर लौट कर नहीं आती, लेकिन मनुष्य तो जन्मजात आशावान् है। वह अगले साल किसीका हाथ पकड़े, हाथमें डंडा लिये दुरारोह पहाड़ोंके कठिन रास्तोंको पार करता मधुपुरी पहुँचा। डाक्टर ने कहा, अभी एक आँखका ही आपरेशन

हो सकता है, दूसरी अभी उसके लायक नहीं हुई है। गोलूको बहुत खुशी हुई। यदि एक आँख भी उसकी काम देने लगे, तो वह अपनी जीवन नैयाको भँवरमेंसे निकाल सकता है। आपरेशन हुआ, हरी पट्टी बँध गई और तीन हफ्ता देखनेके बाद डाक्टरने एक बहुत मोटा चश्मा लगवा दिया। डाक्टरने तो और भी रुकनेके लिए कहा था, लेकिन गोलू एक हफ्ते बाद ही चश्मेके सहारे आँखोंसे काम लेने लगा। आखिर उसे जीते रहनेके लिए खानेका इन्तजाम करना था। उसे दूसरी श्रेणीके लोगोंसे परिचय प्राप्त करना था। रिक्शा खींचनेवाले धीमी चालसे नहीं चल सकते। यद्यपि ऐसा करनेपर उनकी पीठपर कोड़े नहीं पड़ सकते, लेकिन बातका कोड़ा और भी ज्यादा होता है, और उससे भी ज्यादा पहली सवारी छोड़ दूसरी सवारी पकड़नेकी जल्दी रहती है। भला गोलू जैसे साथीको कौन रिक्शावाला पसन्द करता?

अब गोलूको रिक्शा छोड़कर बोझा ढोनेका काम करना पड़ा। उसके स्वभावसे लोग जल्दी ही परिचित हो गये और उसे बोझा मिलने लगा। गोलूने दो वर्ष बाद दूसरी आँख भी बनवा ली, लेकिन उसमें भी पहलीसे अधिक रोशनी नहीं थी। अब उसके लिए रिक्शाके जीवनकी ओर लौटना सदाके लिए बन्द हो गया। मोटी बैशाखी हाथमें लिये वह पीठपर बोझ ढोते मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमने लगा। पहले साल मुश्किलसे खानेभरके लिए कमा सका। उस साल जाड़ोंमें भी वह घर नहीं लौट सका। अगले सालके सीजनको पूराकर अपने गाँव गया, तो यह देखकर उसके दुःखका ठिकाना नहीं रहा कि उसकी स्त्री अब सौतेले भाईकी हो चुकी है। उसने बैलकी तरहसे मर-मरके बापको पैसा दिया, उसका ब्याह करवाया, कर्ज [illegible] बेबाक किया, परिवारको पाला था! लेकिन, [illegible] वह अन्धा और समयसे पहले ही बूढ़ा भी हो ग[illegible] छोड़कर देवरका पल्ला पकड़ा। गोलूने कहा [illegible]

ही उसे मालूम हो गया कि इसका कोई सुफल नहीं मिल सकता। छोटे भाइयोंके हाथ पिटनेसे क्या फ़ायदा? यह निश्चित ही था कि अब वह पहलेके जितना कमा भी नहीं सकता। अंग्रेजोंके हिन्दुस्तान छोड़कर चले जानेके बाद मधुपुरीकी अवस्था दिन-पर दिन गिरती ही गई थी, और स्वस्थ रहनेपर भी पहले जैसी कमाई नहीं हो सकती थी। यदि वह पुरानी कमाई लौट सकती तो शायद गोलूका फिरसे मान बढ़ता। हो सकता है, उसकी स्त्री फिर लौट आती। लेकिन, मधुपुरीके लिए न कोई अभी अच्छे दिनोंकी आशा थी और न गोलू के लिए ही।

बड़ी मुश्किलसे जाड़ोंको गाँवमें बिता सीजनके समय वह फिर मधुपुरी चला आया—हमेशाके लिए, अब उसका कोई दूसरा घर नहीं था। हाथपैर चलाते धीरे-धीरे उसने अपने लिए मधुपुरीमें बारहों महीनेके वास्ते स्थान बना लिया। मजूरी कम किये बिना उसको बोझा नहीं मिल सकता था, इसलिए उसने वह भी किया। मोटा चश्मा लगाये अब वह कुछ देख सकता था, इसलिए उसने अपने इस नये अनिश्चित कालतक समाप्त होनेवाले जीवनको आरम्भ किया।

डाक्टरोंने बतला दिया है कि धूंयेंसे आँखको बचाना, नहीं तो हमेशाके लिए उससे हाथ धोओगे। गोलू अच्छी तरह जानता है कि आँखोंके बराबर कोई नियामत नहीं, इसलिये वह उनका बड़ा ध्यान रखता है। यदि अपनी बीबी होती, तो वह इस समय जरूर रवाज तोड़कर उसे अपने साथ मधुपुरीमें रखता। अब उसे रोटीके लिए दूसरोंपर निर्भर रहना पड़ता है। गरीब लोग जितने ही अधिक कष्टमें रहते हैं, उनमें उतना ही सौहार्द्र भी रहता है। गोलूकी रोटी कोई साथी मजदूर अपने साथ पका देता। आटा और दूसरी चीजें तो गोलू देता ही है, साथ ही उसने ईंधनकी लकड़ी लानेका काम अपने ऊपर ले लिया। दिनमें अगर समय मिल जाता,

जिसका मतलब था कुछ मजूरीसे वंचित रहना—तो इधरके जंगलसे वह मोटी-मोटी सूखी लकड़ियाँ जमा करके ले जाता। उस दिन घड़ी भर रातको ईंधन ले जाना जरूरी था, तभी तो सड़कके किनारेसे वह उँगली भर मोटी लकड़ियाँ जमा करने की कोशिश कर रहा था।

७

पेड़ बाबा

उत्तरी भारतके और वहुतसे स्थानोंकी तरह मधुपुरीमें वर्षाका मौसम १५ जूनसे १५ सितम्वर तक रहता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि १५ जूनको अवश्य वर्षा आरम्भ हो जायगी, और १५ सितम्बरके वाद एक भी वँद न वरसनेकी कसम खा लेंगी। पर इस साल वह ठीक १५ जूनको शुरू हुई, और लगातार १५ सितम्वरके वाद भी वरसती रही। पहाड़ न होता, तो शायद इतनी वर्षासे भारी वाढ़ आ जाती, और लोगोंको वहुत तकलीफ़ होती। मधुपुरीमें ज्यादा और लगातार वर्षाका परिणाम होता है कहीं-कहीं भूपात, लेकिन इस साल वह भी वहुत कम मात्रामें हुआ। पहाड़के ऊपर सड़कें वनाना वड़ा खर्चीला काम है। उसे वरावर देखते रहना भी आवश्यक है। मधुपुरीकी नगरपालिका, शायद दूसरी नगरपालिकाओं की ही तरह, मरम्मतके वारेमें अपना अलग ही सिद्धान्त रखती हैं। थोड़ी वहुत टूट-फूटको कम खर्चमें मरम्मत करना उसे पसन्द नहीं है। सड़कपर दरारोंकी झलक दिखाई दे रही है, पानी कुछ-कुछ उनके भीतर घुसने लगा है, लेकिन जव तक दरार पूरी तौरसे फटकर आधी सड़क नीचे न गिर जाये, तव तक मरम्मतका नाम नहीं लिया जाता। सौ रुपयेकी मरम्मतको हजारका न वनाया जाये, तो ठेकेदार और दूसरे लोगोंको लाभ क्या होगा? अवकी वार ऐसी दो चार मरम्मतें जरूर हुईं, लेकिन नीचेसे आनेवाली मोटरें शायद एक दो दिनसे ज्यादा नहीं रुकीं।

मधुपुरीमें वर्षाका मतलब है सर्दी का भी बढ़ जाना। जहाँ दो तीन दिन लगातार वर्षा हुई या आसमान वादलोंसे ढका रहा और साथ ही कुछ हवा भी चल पड़ी, तो "पूस जाड़ा न माघ जाड़ा, "जव्वे हवा तव्वे जाड़ा" की कहावत पूरी तौरसे चरितार्थ होने लगती है। इतनी ऊँचाईपर जाड़ा बढ़नेका मतलब साधारण जाड़ा नहीं है। लोग अपने वक्समें वन्द किये हुये गरम कपड़ोंको निकालकर पहननेके लिये मजबूर होते हैं। आम तौरसे यह सैलानियोंका मौसम नहीं है, लेकिन पंजावके लोग गर्मीको उतना भयंकर नहीं मानते, जितना वर्षाको, इसलिये खाली मधुपुरीको आबाद करनेके लिये वह यहाँ आ पहुँचते हैं। पर, उसका यह अर्थ नहीं, कि वह पहले सीजनमें आनेवालोंकी संख्याको पूरा कर देते हैं। तो भी यह तो कहना ही पड़ेगा, कि वर्षाके महीनोंकी रौनक पंजावी भद्रपुरुषों और महिलाओंके दमकी वरक्कत है।

अबकी वर्षाके जुलाई-अगस्तके महीनोंकी रौनक करनेके लिये एक और भी वात हुई। मधुपुरीमें तीन वाजार हैं, जिनमें पूरवके छोरवाला केवल सैलानियोंपर निर्भर न रह वहुत कुछ आसपासके पहाड़ी लोगोंपर निर्भर करता है इसलिये वह वारहों महीना एक जैसा रहता है। वाकी दो वाजार अधिकतर सैलानियोंपर गुजर करते हैं। इनमें भी विचला ही ऐसा है, जिसकी आधीके करीव दूकानें जाड़ोंमें खुली रहती हैं। शौकीनीकी या कीमती चीजें वेंचने वाले लोग सैलानियोंके छोड़ते ही समझ जाते हैं, कि उनका अव मधुपुरीमें काम नहीं है। लेकिन, दाल-चावल वेंचनेवालोंके पास एक तो मधुपुरी छोड़ और कोई ठाँव नहीं है, दूसरे कभी-कभी उनकी कुछ बिक्री भी हो जाती है, इसी आशामें वह पड़े रहते हैं। दूसरे छोरकी वाजारमें जाड़ोंमें दूकानें और भी कम खुली रहती हैं। विचला वाजार केन्द्रमें है, और उसीको सदर वाजार या चौक वाजार कहा जा सकता है। जुलाईके महीनेमें इसकी रौनकमें इतना

ही अन्तर था, कि अब खरीदारोंकी उतनी भीड़ नहीं थी। यह केन्द्रीय जगह, अर्थात् मधुपुरीके सभी बँगलों, कोठियों और बाजारोंके बीचमें अवस्थित है, इसलिये इसका महत्व दूकानदारों और खरीदारों दोनोंके लिये बहुत है। पहाड़के किनारे पतली रेखा जैसी सड़कपर बाजारके घरोंके बसे रहनेके कारण थोड़ी ही दूरपर जंगलका होना स्वाभाविक है।

वर्षा या बादल कई दिनोंसे बराबर बने रहे। उनके तथा बढ़ी हुई सर्दीके कारण भी लोग बहुत आवश्यक होने ही पर बाहर निकलते थे। बाजारके पिछवाड़ेसे जानेवाली सड़कपर वैसे भी बहुत ही कम लोग मिलते थे। एक दिन किसीने देखा, सड़कके नीचे एक पेड़के ऊपर भगवे कपड़े टँगे हैं, एक छाता लगा हुआ है। यह यों ही नहीं टँगे थे। छत्तेके नीचे पेड़के तनेसे जहाँ दो मोटी-मोटी बालियाँ दो ओर जाती थीं, उसपर लकड़ीके पटरे रखकर बैठनेकी जगह बनाई गई थी, और अगल-बगलमें रस्सी तानकर ऐसी मजबूत बाड़ बना दी गई थी, कि वहाँ बैठनेवालेके गिरनेकी सम्भावना नहीं थी। गौरसे देखनेपर मालूम हुआ, कि सिरसे पैरतक गेरुवेमें लिपटी एक मूर्ति वहाँ चुपचाप बैठी है। कानों-कान इसकी खबर दूसरों तक पहुँची, लेकिन एक-दो दिन तक लोगोंने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया, यद्यपि इतनी वर्षा और उसके कारण हुई सर्दीमें पेड़के ऊपर किसी आदमीका रात दिन बैठे रहना आश्चर्यकी बात थी। जब-तब एकाध स्त्री पुरुषोंने पेड़के पास जाकर देखनेकी कोशिश की, मूर्ति पत्थर जैसी बिना सुगबुगाये बैठी थी। तीसरे-चौथे दिन खबर उड़ने लगी, कि एक तपस्वी महात्मा केन्द्रीय बाजारके पास पेड़पर बैठे तपस्या कर रहे हैं, जो न कुछ खाते-पीते हैं, और न किसीसे बोलते हैं। सबेरेसे अँधेरा होने तक कितने ही लोगोंने जाकर देखा, पेड़बाबा पेड़की तरह ही स्तब्ध निश्चल बैठे हैं। उनका मुँह कैसा है, इसे लोग नहीं देख पाते थे। सप्ताह बीतते-बीतते पेड़ बाबाकी

करामात और कहानियाँ भी मशहूर होने लगीं—न वह कुछ खाते हैं, न उन्हें शौच जानेकी जरूरत है, वह वरावर ध्यानमें लीन रहते हैं।

विना खाये-पीये हफ्ते भर रह जाना कोई मुश्किल वात नहीं है। किसीने सन्देह प्रकट किया, कि शायद रातमें पेड़वावाके पास कुछ खाना पहुँचता हो, इसपर कुछ लोग कसम खानेके लिये तैयार हो गये, कि हमने रातभर जागकर पहरा दिया, और देखा कि पेड़वावा उसी तरह अपने आसनमें वैठे हुए हैं। वर्षाका दिन था, प्यास वुझानेके लिये भींगे कपड़ोंसे पानी मिल सकता था, तो भी साधक लोग कह रहे थे, कि वह पानी भी नहीं पीते।

:o: :o: :o:

एक हफ्तेके वाद दूसरा वीता। पेड़वावा अभी भी उसी तरहसे अपने आसनपर जमे हुये थे। अव मधुपुरीकी उस सुनसान रहनेवाली सड़कपर मेला-सा लगने लगा। जिस वक्त वर्षा नहीं होती, उस समय तो मालूम होता था, सारी मधुपुरी उमड़ आई हो। स्त्रियाँ अलग फूलमाला या पूजाकी कोई दूसरी सामग्री लिये वैठी हैं, पुरुष भी उसी तरह भीड़ लगाये हैं। साधारण अशिक्षित लोगोंकी संख्या वहुत कम थी। वाहरसे आये अपटुडेट तरुण-तरुणियाँ पेड़वावाके पास से नीचे-ऊपर जानेवाली सड़कोंपर भीड़ लगाये थे। जव पेड़वावाने एक मेला लगा दिया, तो मेलेकी सारी चीजें वहाँ एकत्रित होनी ही चाहियें। खानेकी चीजोंको लेकर खोमचेवाले भी पहुँचे। पानवाला भी वहाँ मौजूद और चना-जोर-गरमवाले वाजारकी सड़कोंको छोड़कर अव यहाँ अपने लटके गाने लगे। सिनेमा-तारिकाओंको मात करनेवाली तरुणियाँ वार-वार अपने हैण्डवेगसे सीसा निकालकर लिप्स्टिकको सुधारती रहतीं, और गम्भीर प्रकृतिके लोग कुछ और चर्चा छेड़े खड़े रहते। मधुपुरीमें प्रैक्टिस करनेवाले दो अच्छे वकील कोट-पैंट और फ़ेल्टहैट लगाये खड़े पेड़वावाकी ओर देख रहे थे। पाससे उनका कोई परिचित

पुरुष रास्ते जा रहा था, उसे देखकर दोनों एडवोकेट साहबान अपनेको रोक नहीं सके, और उन्होंने अंग्रेजीमें पेड़वाबाकी ओर इशारा करके अपने परिचितको रोका। फिर पेड़वाबाकी महिमा गानी शुरू की। अब पेड़वाबाको वहाँ रहते तीन हफ्ते हो चुके थे। कोट, पैंट, हैट भले ही हो, और आधुनिक भक्ष्याभक्ष्यका भी चाहे ख्याल न हो, किन्तु थे दोनों वकील साहबान सनातनधर्मके मानने-वाले। पेड़पर बाबाका गेरुवा नहीं लटक रहा था, बल्कि सनातन-धर्मकी विजय-ध्वजा फहरा रही थी। लोग आँखोंके सामने धर्मके महाप्रतापको देख रहे थे। साधारण लोग कह रहे थे—यदि ऐसे महात्मा न होते, तो दुनिया चलती कैसे ? उन्हींकी तरहकी भाषामें दोनों वकील साहब भी कह रहे थे—हाँ, धर्मके पालनेवाले ध्यानियों और तपस्वियोंसे संसार सूना नहीं है।

इतनी सर्दीमें चौबीसों घंटे पेड़पर भींगते रहना आश्चर्यकी बात तो थी ही, फिर इसे देखनेके लिये ऐसे लोग भी क्यों न जाते, जिनका इन बातोंपर विश्वास नहीं है। मेरे एक मित्र स्वयं वर्षों घोर तपस्या कर चुके थे। ऋषिकेशमें गंगा पार, जहाँ जंगलोंमें अब भी जंगली हाथी घूमा करते हैं, एक निर्जन स्थानमें वह पेड़बाबा बनकर कई महीने रहे थे। हाथी इन पेड़बाबाकी अपनी मर्जीके मुताबिक ही पूजा करते, लेकिन ईमानदार होते हुये भी पेड़बाबाने बहुत मोटा वृक्ष चुना था। जिन डालियोंपर अपने बैठने-लेटनेके लिये उन्होंने मचान तैयार कराया था, वह बड़ेसे बड़े हाथीकी सूँड़की पहुँच से बाहर थी। हाथी रातके वक्त इस तरफ़ आते थे, क्योंकि गंगा पास थी। वहाँ आदमियोंसे डर रहता था। एक बार नदी तटके चट्टानोंमें एक छोटा बच्चा फँस गया। कई घंटे तक हाथियोंने उसे निकालनेकी कोशिश की, लेकिन वह निकाल नहीं सके। सवेरा होते देख हाथियोंका झुण्ड बच्चेको वहीं छोड़कर चला गया। इन पेड़बाबाको अपनी करामात किसीको

दिखानी नहीं थी, नहीं तो ऋषिकेश शहरके पास किसी पेड़को चुनते। दूध वेचनेवाले ग्वालियोंका डेरा उसी जंगलमें कुछ दूर पर था। उनसे पेड़बाबाने दूधका इन्तिजामकर लिया था। वह केवल दूधाधारी थे। निर्जन जंगलमें रहनेवाले पेड़बावाकी कीर्ति ऋषिकेशमें भी पहुँची और बम्बईका एक श्रद्धालु सेठ दर्शन करनेके लिये उनके पास गया। न माननेपर भी बहुत आग्रह करके ग्वालियोंसे दूधका बँधान करके वह पैसे दे गया। वह पेड़बावा ईमानदारीके साथ हिन्दू-धर्मकी सभी तपस्याओं और ध्यान योगका अभ्यास करते रहे। उनको दूकान नहीं चलानी थी, और अब ६० से ऊपर पहुँचकर वह कट्टर नास्तिक हैं।

भूतपूर्व पेड़बावाने भी इस नये पेड़बाबाको जाकर देखा। वह घरके भेदिया थे, या जिसमें वह स्वयं असफल रहे, उसमें दूसरे व्यक्तिको सिद्धि लाभ करते देख ईर्ष्या हो आई, कह रहे थे : अगर तपस्या करनी थी, तो किसी जंगलमें जाता, यहाँ मधुपुरीके सबसे बड़े बाजारके सौ कदमपर पेड़बाबा बनना केवल धोखा-धड़ी है।

उनके मित्रने कहा—आखिर हिन्दुस्तानमें जहाँ भी देखिए, उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिम तक धर्मकी छोटी-बड़ी दूकानें खुली हुई हैं। यह धर्मके सेठ लोग अपने सौदेके प्रचारके लिये नयेसे नये साधनोंका इस्तेमाल कर रहे हैं। अब तो उसीकी दूकानकी ख्याति बढ़ती है, जो अपने सौदोंको अंग्रेजीके रूपमें पेश करे, और उसके शिष्योंमें अंग्रेजीके डिग्रीधारी स्त्रीपुरुषोंकी काफी संख्या हो। अगर दो-चार गौरांग-गौराँगिनियाँ भक्त बन जायँ, तो कहना ही क्या है? करोड़पति सेठ जानते हैं, कि धर्म और अन्धविश्वासका पल्ला जितना ही भारी रहे, उतनी ही हमारी खैरियत है। इसलिये इन महात्माओंकी महिमा गानेके लिये उनके पत्रोंके कालम खुले रहते हैं।

दोनों मित्र और उनकी ही तरहके कुछ और स्वतन्त्र विचार रखनेवाले स्त्री-पुरुष भी मधुपुरीमें थे। यदि उनकी चलती, तो पेड़बाबाको महीने भर चुपचाप पेड़पर टँगे रह खाली हाथों ही जाना पड़ता। लेकिन, आजके "ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्" के माननेवाले भी चार्वाककी तरह नास्तिक नहीं होते। पेड़बाबा बोलते नहीं थे, और न वहाँ ऐसा प्रवन्ध था, कि उनसे एकान्तमें इशारेसे भी वात हो सके, नहीं तो इनमेंसे कितने ही उनके पास जाकर अपने भाग्यको दिखलाते, तथा कोई मंत्र-तंत्र प्राप्त करनेकी कोशिश करते, जिसमें उनकी आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सभी तरहकी व्याधियाँ दूर हो जातीं। पेड़बाबा नास्तिकों और बुद्धि-वादियोंको देखकर यहाँ नहीं आये थे। वह जानते थे, कि मधुपुरी जैसी नगरी भी श्रद्धालुओंसे खाली नहीं, वल्कि भरी हुई है। दर्जन-दो-दर्जन नास्तिक हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, और उनकी वातोंको सुनकर कोई नहीं भड़क सकता। श्रद्धालु उन्हें मुँहतोड़ जवाव दे सकते हैं—यदि कुछ नहीं है, तो तुम भी जरा चौवीस घंटे ही इस वर्षा और सर्दीमें किसी पेड़पर वैठकर देख लो।

शायद एक ही हफ्ता वीता था, जव खवर लगी, कि पेड़बाबा दिनमें एक वार कुछ मिनटोंके लिये अपना मुँह खोलकर भक्तों और भक्तिनोंको दर्शन देते हैं। वावाने इसके लिये दोपहरका समय चुना था। गेरुवे वस्त्रसे ढँकी मूर्ति कुछ मिनटोंके लिये सड़ककी ओर मुँह खोल देती। भक्त लोग गद्गद् हो जयकार करनेके लिये तैयार हो जाते थे; लेकिन उन्हें पहलेही सचेतकर दिया गया था, कि वावा मौन तथा ध्यानमें मग्न हैं, वह ऐसा हल्ला-गुल्ला सुनना नहीं चाहते। पेड़बाबाके सिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं था। उनके वारेमें कुछ पतेकी वातें कौन लोगों तक पहुँचाता था? पेड़के पास कोई साधक दिखाई नहीं पड़ता था। तो भी बाबाकी चौवीस घंटेकी चर्या मधुपुरीकी सड़कोंपर सुनी जा सकती थी—अमुक वक्त वह

र्शन देते हैं, इसे भी लोगोंको मालूम कराया गया था; और यह भी
क बाबा पूरे एक महीने तक यहाँ तपस्या करेंगे। फिर उद्यापन
रके उत्तराखंडमें हमेशाके लिये चले जायेंगे। हिमालयकी किसी
गुफासे वह आये भी थे। उनकी आयुके लिये हजार वर्ष कहनेवालों
और विश्वास करनेवालोंकी भी कमी नहीं थी। सचमुच उस एक
महीनेमें मधुपुरीमें धर्मकी बाढ़ आ गई, आर्यसमाजियोंका मुँह
फीका पड़ गया। यहाँके दूकानदारोंमें सनातनधर्मी और
आर्यसमाजी दोनों थे। आर्यसमाजी अपने तर्कसे सनातनियोंको
पछाड़ना चाहते थे, और यहाँ पेड़बाबा अचल और
मौन रहकर उनके हजारों तर्कोंका जवाब दे रहे थे। आर्यसमाजियोंकी
गृहिणियाँ भी भक्तिभाव दिखलानेमें पीछे नहीं थीं। उस वक्त
साफ दिखलाई पड़ा, कि मौखिक प्रोपेगेंडा आचारिक-प्रोपेगेंडासे
बहुत निर्बल होता है। जिस तरह पेड़बाबाको सतयुगका ऋषि-मुनि
कहा जा सकता था, उसी तरह उनके ज्ञान और विद्याको भी अनन्त
बतलाया जा सकता था; क्योंकि मौन रहनेपर आदमीके ज्ञान-
विज्ञानका क्या पता लग सकता है?

:o: :o: :o:

पेड़बाबाकी महीनेकी तपस्या पूरी हुई। पहले हीसे निश्चित
हो चुका था, कि किस वक्त वह पेड़से नीचे उतरेंगे। उस समय
पासके पर्वत-पृष्ठपर तिल रखनेकी जगह नहीं थी। सभी जगह
जेंटलमैन और लेडियाँ, साधारण लोग-लुगाइयाँ, लड़के-लड़कियाँ
भर गये थे। एकाधको फिसलकर गिरना भी पड़ा, लेकिन पेड़बाबाके
प्रतापसे किसीका अंग-भंग होनेकी नौबत नहीं आई। पेड़बाबाके
दर्शनके लिये हिन्दू या भारतीय ही नहीं, बल्कि उस समय मधुपुरीमें
रहनेवाले यूरोपियन नर-नारियोंने भी अपनेको रोक नहीं पाया।
पेड़बाबाका प्रचार इतनी सुव्यवस्थित रीतिसे और चुपचाप हो रहा
था, जिसके सामने मधुपुरीकी नगरपालिकाके चुनावका प्रचार भी

कुछ नहीं था। सब बातोंमें एक तरहकी व्यवस्था और बाकायादगी देखी जाती थी। पेड़से उतरनेके समय न जाने कहाँसे बाजे भी पहुँच गये। वर्षाके इस महीनेमें मधुपुरीमें बहुत तरहके फूल मिलते हैं, उनकी मालाएँ लोगोंके हाथोंमें दीख पड़ती थीं। पेड़बाबा अब भी चेहरेको खोले नहीं थे। मध्य-एशियाका एक सिद्ध इसलिये अपने मुँहपर हमेशा हरे रंगका कपड़ा रखता था, कि लोग उसके मुखके तेजको सह नहीं सकेंगे। शायद पेड़बाबाका भी कुछ ऐसा ही ख्याल था। मधुपुरीके केन्द्रीय बाजारमें पेड़बाबाके पेड़के पास ही एक नई विशाल इमारत बनी थी, जिसमें दूकान रखनेके लिये बड़े-बड़े हाल थे। आखिर मधुपुरीके मकान-मालिक भी तो धर्मके माननेवाले हैं। इस समय नई बनी दूकानें आबाद नहीं थीं। एक हालमें लाकर पेड़बाबाको रक्खा गया। पेड़बाबा अब मुँह ढाँके एक पैरपर खड़े थे। उन्हें पूरे भागवतकी कथा सुननी थी, और समाप्तिपर हजार ब्राह्मणोंका भोज कराना था। मधुपुरीके स्थायी निवासी वैसे तो आजकल बराबर मन्दीकी शिकायत करते रहते हैं, लेकिन उनके खाली हाथोंमें इस समय पेड़बाबाके लिये न जाने कैसे पैसेकी बाढ़ आ गई थी। उन्होंने दिल खोलकर पेड़बाबाके यज्ञमें पैसा दिया। एक दर्जन ब्राह्मण कथा कहनेके लिये बैठा दिये गये। उन्हें दोनों वक्त पूड़ी मिठाई और अच्छा भोजन मिलता, जिसका प्रबन्ध हलवाइयोंसे कर दिया गया था। पेड़बाबा एक टाँगपर खड़े दिनभर—जानकारोंका कहना है रातको भी—खड़े रहते। पूड़ी मिठाई खानेवाले ब्राह्मण अब उनके तेज और तपस्याके बारेमें प्रचार करनेमें सबसे आगे थे। बातकी बातमें लोगोंने पाँच हजार रुपये जमा कर दिये। कथा और यज्ञके लिये जो थाली रख दी गई थी, उसमें भी रुपयों, अठन्नियों और चौअन्नियोंकी वर्षा होती रहती थी।

पेड़बाबाके यज्ञ और दर्शनका लाभ उठानेका जिन्हें मौका मिला था, वह कह रहे थे, कि पेड़बाबाके नजदीक जानेहीसे आदमीके

मनमें दिव्य भाव पैदा हो जाते हैं। कुछ गीता पढ़े हुए लोग कहते—वहाँ आसुरी सम्पत्ति रह नहीं सकती, वहाँ तो केवल दैवी सम्पत्तिका वासा है। मधुपुरीमें यह बात नहीं, कि केवल विलासी ही आया करते हैं, यहाँ पर इस वर्गका उद्धार करनेका बीड़ा उठानेवाले कितने ही हिजहोलिनेस, शंकराचार्य और पहुँचे हुये सिद्ध भी आते हैं। विशेषकर जब मधुपुरी गोरे हाथोंसे निकलकर काले हाथोंमें आई, तबसे गेरुवाधारी या जटावाले महात्माओंका यहाँ अभाव नहीं रहता। अब तो शंकराचार्य लोग यहाँ आकर वर्षावास करने लगे हैं। आखिर राजभवन तो महात्माओंकी वाणी या चरण-रजसे सत्ययुगमें भी शून्य नहीं थ, फिर इस कलियुगके जंगम तीर्थ हमारे साधु-महात्मा कैसे संसार-पंकमग्न इन विलासी जीवोंको डूबनेके लिये छोड़ सकते हैं? लेकिन, पेड़बाबा और दूसरे महात्माओंमें बड़ा अन्तर था। मधुपुरीके सैलानी प्रायः सभी मध्य-वर्गके होते हैं, शिक्षित ही नहीं, बल्कि उनमें शत-प्रतिशत अंग्रेजीके जानकार होते हैं—महिलाओंमें शायद कुछ सेठानियाँ हीं अंग्रेजी भाषासे वंचित हों। ऐसे लोगोंके ऊपर स्थूल हथकण्डे काम नहीं आते। उनपर अंकुश रखनेके लिये विद्या और ज्ञानकी आवश्यकता होती है। इसलिये अपटुडेट टेकनीक रखनेवाले साधु-महात्मा ही उनको अपनी ओर खींच सकते हैं। जिस वक्त पेड़बाबाके आनेकी खबर मधुपुरीमें पहले-पहल फैली, उस वक्त कितने ही लोग—जिन्हें श्रद्धाहीन नहीं कहा जा सकता—भी कहने लगे थे: "यह बहुत क्रूड टेकनीक (भद्दा हथकण्डा) है। पेड़पर बैठकर आजकल कितने ही बंदर भी भींग रहे हैं, लेकिन कोई उनके पीछे मारा-मारा नहीं फिरता।" सज्जनोंको यही विश्वास था, कि अद्वैतब्रह्म पर बारीकीसे सर्मन देनेवाला ही शिक्षितोंको अपनी ओर खींच सकता है। पेड़बाबा यदि हफ्तेके भीतर सिद्धिलाभ करना चाहते, तो अवश्य निराश होना पड़ता। लेकि महामन्त्र था—"आये हैं तेरे दर पै, तो कुछ करके

पेड़बाबा कुछ करके उठे, यह सन्देहवादियोंको भी मानना पड़ा। वह मधुपुरीमें जबतक रहे, बराबर मौन रहे, लेकिन उनकी सन्निधि मात्रसे लोगोंने बहुत लाभ उठाया। लोभ तो उन्हें छू नहीं गया था। रुपयोंकी वर्षा हो रही थी, लेकिन उनको छूना तो क्या, उधर ताकना भी वह पसन्द नहीं करते थे। जो कुछ आया, सब दान-पुण्यमें लुटाया। इस दान-पुण्यके सबसे बड़े पात्र मधुपुरीके ब्राह्मण देवता थे, जो यहाँ के सबसे सताये लोग थे। विलासपुरीमें उनको भूखे ही मर जाना पड़ता, यदि अब भी पुराने ढर्रेके दूकानदार यहाँ न होते। इधर भागवतकी कथा हो रही थी, उधर भोजकी तैयारी बड़े जोर-शोरसे की जा रही थी। भूखों-भिखमंगोंके भोजन करानेका उतना फल थोड़े ही होता है, जितना भू-सुरोंको भोजन और दक्षिणा देनेका।

वैसे पहले ही सप्ताहमें पेड़बाबाके प्रति नास्तिकता रखनेवालों का जोर घट गया था। लेकिन, उनके उतरकर एक टाँगसे खड़े होकर कथा सुननेके सप्ताहके बीतते-बीतते तो किसी नास्तिककी मधुपुरीमें खैरियत नहीं थी। शिक्षित-अशिक्षित, तरुण-वृद्ध, स्थायी-निवासी-सैलानी सभीमें भक्तिकी बाढ़ आ गई थी। चारों ओर उसका इतना प्रखर प्रकाश फैल रहा था, कि लोगोंकी आँखें चौंधिया गई थीं। सिनेमाघर हो, या क्लबघर, सड़क हो या बँगला, हर जगह केवल पेड़बाबा की चर्चा थी। भारतीयोंके घरोंहीमें नहीं, ऐंग्लो-इण्डियन और यूरोपियन परिवारमें भी पेड़बाबाका बखान हो रहा था—कुछ लोग नुकताचीनी भी कर रहे थे, लेकिन एक मत होकर नहीं। कैथलिक लोग साधुओंकी करामातोंपर विश्वास रखते हैं। अभी इसी साल तो इतालीके किसी गाँवमें मदोन्नाकी मिट्टीकी आँखोंसे कई दिनों तक आँसू बहे थे। हजारों नर नारियोंने अपनी आँखों उसे देखा था, और अखबार क्यों झूठ बोलने लगे? उनके कहनेके अनुसार रसायनिक विश्लेषण करनेपर वह आँसू बिल्कुल मनुष्यके आँसुओं जैसे थे। कैथलिकोंको अगर पेड़बाबामें सन्देह

हो सकता था, तो इसीलिये, कि पैगन (काफिर) साधु ऐसी करामात-का धनी कैसे हो सकता है ?

भागवत-समाप्तिका समय नजदीक आ रहा था। कथाको यदि अर्थ-सहित कहा जाता, तो और समय लगता। उसका सिर्फ पारायण हो रहा था, जिसे पेड़बाबा अपनी सर्वज्ञताके कारण समझ सकते थे, नहीं तो भागवतके पाठ करनेवालोंमें भी विरले ही कुछ समझ पाते थे। सबकी इच्छा यही थी, कि कथा जल्दी समाप्त न हो, और पेड़बाबा कुछ और दिनों तक हमारे बीचमें बने रहें।

यज्ञ समाप्तिका दिन आया। उस दिन मधुपुरीके नागरिकोंने अपनी श्रद्धाका चरमरूप दिखलाना चाहा। जितने भी बैण्ड बाजे मौजूद थे, उन सबको किरायेपर कर लिया गया। आज बाबाका जलूस निकलनेवाला था। साधारण बनियोंकी तो बात ही क्या, पश्चिमी ढंगमें रंगे आधुनिक शिक्षा-दीक्षामें निष्णात फैशन और शौकीनीकी महँगी चीजोंके बेचनेवाले दूकानदारोंमेंसे भी अधिकांशने अपनी दूकानोंको उस दिन सजाया था। सड़कपर कई जगह तोरण लगाये गये थे। यद्यपि मधुपुरीकी माल-सड़कपर मोटरका चलना जिलामजिस्ट्रेटकी विशेष आज्ञाके बिना नहीं हो सकता लेकिन, पेड़बाबाके लिये मजिस्ट्रेट क्या लाटसाहबकी भी इजाजत आसानीसे मिल सकती थी। प्रदेशके लाटसाहब स्वयं एक धर्मप्राण महापुरुष हैं, जो हर समय हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू गौरवका गान करते यही अफसोस करते हैं, कि वह शेषनागकी तरह सहस्र जिह्व नहीं हुये। लेकिन पेड़बाबाको यह सब बातें पसन्द नहीं थीं। उन्हें मोटरकी क्या आवश्यकता ? मौन थे, तब भी उनके भावोंसे आदमी स्वयं समझ लेते थे, कि वह कह रहे हैं—मेरे पास सबसे बड़ी मोटर मेरे दोनों पैर हैं, जिससे मैं हिमालयके सर्वोच्च शिखरोंपर विचरा करता हूँ। बाबाके बैठनेके लिये मोटरका नहीं रिक्शेका प्रबन्ध किया गया। कभी मुँह जरा-सा खोले और कभी ढके वह

सी पर नर-नारियोंकी भीड़में मधुपुरीकी सड़कपर एक छोरसे सरे छोरतक गये। उनकी चरण-रेणु मालरोडपर हमेशाके लिये बिखर गई। रास्तेमें हर जगह पुष्प-वर्षा होती, कपूरकी आरती कदम-कदमपर उतारी जाती। भक्त लोग उनके चरणोंमें कहीं साष्टांग दंडवत् करते, कहीं उनकी चरणधूलि लेकर अपनी आंखों और सिरमें लगाते। पेड़बाबा मौन उसी तरह कई घण्टे जलूसमें रहे। सचमुच यह किसी करामातसे कम नहीं था। पेड़बाबा बोलते भी, तो उनके पास एक ही जीभ थी, पर यहाँ हजार-हजार जीभ उनकी तरफसे बोलनेके लिये तैयार थीं। "पेड़बाबाकी जय" सभी जगह होती रही, लेकिन आर्यसमाज मन्दिरके पास जब जलूस पहुँचा, तो लोग बड़े जोर-जोरसे "सनातन धर्मकी जय" करने लगे। आर्य-समाजके लिये यह चैलेंज था, इसमें शक नहीं। सनातन धर्मकी इस समय पाँचो घीमें थीं, और उससे फ़ायदा उठानेमें हिन्दू संस्कृतिके जारेदार भी किसीसे पीछे नहीं थे।

भोज हुआ। सरकारने भोजमें आदमियोंकी संख्या कानून द्वारा सीमित कर दी है। पेड़बाबाके भोजमें उस संख्यामें एक नहीं दो सुनेकी वृद्धि थी। कानूनके धनीधोरी सरकारी अफसर मधुपुरी-में मौजूद थे, लेकिन मजाल क्या, कि वह इसमें बाधा डालकर अपने-को हिरण्यकशिपुकी सन्तान साबित करते। हलवाइयोंको पहले ही पैसा मिल गया था और उन्होंने तरह-तरहके पकवान बनाये। उनकी दूकानोंमें इतनी बिक्री द्वितीय महायुद्धके समाप्त होनेके बाद शायद ही किसी दिन हुई हो। वह सचमुच निहाल हो गये। वस्तुतः निहाल होनेवालोंमें मधुपुरीके हलवाई और ब्राह्मण दो ही थे, वैसे धर्म-लाभसे निहाल होनेवालोंमें मधुपुरीके सारे निवासी शामिल थे। अब वह पेड़ सूना हो गया था। धर्मप्राण लोग कुछ सोच रहे थे, कि बाबाकी तपस्याके प्रतीक इस पेड़को भी कोई अचल-कीर्तिका रूप देनेका इन्तिजाम किया जाये। बुद्धने पीपलके पेड़के

नीचे ध्यान करते परमज्ञानको लाभ किया था, इसके कारण पीपल युग-युगके लिये पवित्र वृक्ष बन गया। मधुपुरीका वह बान वृक्ष भी कुछ उसी तरहका महत्व रखता है। बान वृक्षकी सारी जातिको पेड़बाबाका वृक्ष बनाना भक्तोंकी शक्तिसे बाहर था, क्योंकि वह ऐसी ही जगह हो सकता है, जहाँ सालमें कमसे कम एकाध बार हिमवृष्टि हो जाये, या वह न हो तो तापमान हिमबिन्दुसे कुछ रातोंतक जरूर नीचे रहे। बाबाके पेड़को सूना देखकर लोगोंको दुःख होता था, इसलिये किसीने वहाँ भगवा कपड़ेकी एक छोटी-सी झण्डी गाड़ दी थी। अब तो वह मकान भी सूना होने जा रहा था, जिसमें इतने दिनोंतक हरि-कथा होती रही, जयजयकार होता रहा, और सुबहसे शामतक हजारों नर नारियोंकी भीड़ बनी रहती।

हरेक त्यौहार और महोत्सवका कभी न कभी अन्त होता ही है। एकाएक जन-कल्लोल और आनन्दकी बाढ़के बाद नीरवता छा जानेसे चारों ओर उदासी-ही-उदासी दीखने लगती है। पेड़ बाबाके मधुपुरी छोड़नेका दिन आ गया। एक बार फिर भक्त नर-नारियोंने अपने आराध्य देवका दर्शन कर लेना चाहा। बाबा घरसे बाहर सड़कपर आये। सामने सिनेमाघर था। आजकल सिनेमा सबसे बड़ा तीर्थ है, उसके सामने सभी धर्मोंके देवालय फीके हो गये हैं, और वहाँ नंगी तारिकाओंकी तस्वीरें किसी देवीसे कम भक्तोंको अपनी ओर आकृष्ट नहीं करतीं। लेकिन, उस दिन सिनेमा और उसकी तारिकायें भी पेड़बाबाके सामने फीकी पड़ गईं। कोई उधर झाँकनेकी चाह नहीं करता था। सभी पेड़बाबाको, भगवे कपड़ेके भीतर ढँकी लम्बी मूर्तिको देख रहे थे। मौन रहनेपर भी कुछ लोग पेड़बाबाके बहुत नजदीकी हो गये थे। जिसमें अधिक भक्ति होगी, वह देवताका सान्निध्य प्राप्त करता ही है। बाबाके पास कोई साजोसामान नहीं था, वही गेरुवे कपड़े और एक काला छत्ता अब भी उनके पास था, जिसे लेकर वह पेड़पर विराजमान

हुए थे। बाबाकी चलती, तो मधुपुरीसे नीचेके शहर तक पैदल ही ही जाते, लेकिन भगवान्को भी भक्तोंका आग्रह कभी-कभी मानना ही पड़ता है। उनके लिये कार ठीक करनेमें दिक्कत क्या थी? मधुपुरीमें कार रखनेवाले पचासों मौजूद थे, जो सभी अपना अहोभाग्य समझते, यदि बाबा उनकी कारमें पैर रख देते। किसी पुण्यात्माको अपनी कार देकर सेवा करनेका मौका मिला। बाबा मधुपुरीसे विदा ले रहे थे। वह वीतराग थे, दुःख-सुख, लाभालाभ, जयाजयमें उनकी समबुद्धि थी। लेकिन, उनके सानिध्यसे जिनकी आत्मा पवित्र हुई थी, जन्म-जन्मके पाप दूर हुये थे, वह तो वीतराग नहीं थे। सबकी आँखें गीली नहीं, वर्षाकी बूँदोंकी तरह आँसू बहा रही थीं। हमारे पूर्व परिचित हैटधारी दोनों वकील साहबान भी वहाँ पहुँचे हुये थे। उनकी भी आँखें गीली थीं। कितने ही मुँहसे और कितने ही मूक हृदयसे यही बार-बार प्रार्थना कर रहे थे—बाबा मधुपुरीको न भूलना, फिर हम पापियों को आकर एक बार दर्शन देना।

कारपर चढकर बाबा नीचेके नगरमें पहुँचे। वहाँ भी उनके स्वागतके लिये लोग तैयार थे। किन्तु यह नागरिक और नागरिकायें, नहीं, बल्कि एक दर्जन सिपाहियोंके साथ पुलिसके इन्सपेक्टर और थानेदार। उन्हें टेलीफोनसे पहले ही खबर मिल चुकी थी। पहाड़से उतरते ही बाबाकी कारके पीछे एक और कार भी चल रही थी। नगरके भीतर घुसते ही इन्सपेक्टरने कारके रोकनेका हुक्म दिया। कार पूरी तौरसे रुक नहीं पाई थी, तभी चारों ओरसे उसे पुलिस के जवानोंने घेर लिया। इन्सपेक्टरने हाथ पकड़कर कुछ जोर दे कारसे उतारते हुए कहा—पेड़बाबा, मधुपुरीके लोगों का तुमने निस्तार कर दिया, अब चलो हमारे जेलका निस्तार करो।

पेड़बाबा डाकुओंके गरोहका सरदार निकला, किन्तु कौन कह सकता है, मधुपुरीको उसने तार नहीं दिया?

*